यजुर्वेदीय सन्ध्या-तर्पण पद्धति

मन्त्रार्थ, प्रक्रिया सहित

देवेन्द्रनाथ शुक्ल

यजुर्वेदीय सन्ध्या-तर्पण पद्धति

मन्त्रार्थ, प्रक्रिया सहित

देवेन्द्रनाथ शुक्ल

YAJURVERDIYA SANDHYA-TARPAN PADDHATI

by

Devendra Nath Shukla

प्रथम संस्करण : २००२ ई०

मूल्य : तीस रुपये

प्रकाशक

देवेन्द्रनाथ शुक्ल

शुक्ल-निकेत

सी० १७९-४५३, बेतियाहाता

गोरखपुर-२७३ ००१

वितरक

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी-२२१ ००१

फोन व फैक्स : (०५४२) ३५३७४१, ३५३०८२

E-mail : vvp@vsnl.com ● E-mail : vecppl@satyam.net.in

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी-२२१ ००१

धियो यो नः प्रचोदयात्

गायत्री छन्दसामहम्[1]। छन्दों में मैं गायत्री हूँ? ये शब्द स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के हैं। निःसन्देह छन्द को यह श्रेष्ठता उसकी अधिष्ठात्री भगवती गायत्री के कारण प्राप्त हुई है। त्रिकाल की सन्ध्योपासना का मूल लक्ष्य गायत्री मन्त्र का जप है। सभी यज्ञों में जप को सर्वश्रेष्ठ घोषित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण का कथन है—मैं यज्ञों में जपयज्ञ हूँ।[2] निष्कर्ष यह कि, गायत्री के अधिकारी द्विजों का परम कर्त्तव्य है, प्रतिदिन सन्ध्योपासन एवं गायत्री जप।

उपनयन संस्कार सम्पन्न होने के नाते गायत्री जप के अधिकारी ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य तीनों हैं। ''प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र के दो और विकल्प, क्षत्रियों के लिए त्रिष्टुप्, एवं वैश्यों के लिए जगती छन्द में है। त्रिष्टुप् छन्द की गायत्री इस प्रकार है—

(१) ॐ देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम्। धिया भगं मनामहे।

हम, देव सविता के ज्ञान का ध्यान करते हैं जो सभी सम्पन्नताओं का कारण और सभी देवों के लिए उत्तम है।

(२) ॐ विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः
प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे।
विनाकमख्यत् सविता वरेण्यो
ऽनुप्रयाणमुषसो विराजति ॥ (जगती)।

बुद्धिमान् व्यक्ति स्वयं को सभी रूपों में विन्यस्त कर द्विपदों और चतुष्पदों के लिये कल्याण लाता है। उषा के अवसान के अनन्तर श्रेष्ठतम सूर्यदेव द्युलोक का अवलोकन करते देदीप्यमान होते हैं।''[3]

गायत्री के उक्त दो विकल्पों के होते भी मूल गायत्री में तीनों वर्णों का समानाधिकार होने के कारण व्याहृतियुता गायत्री का सर्वाधिक प्रचार

---

१. गीता अ० १०/३५। २. गीता अ० १०/२५।

3. I. K. TAIMNI, Gayatri, p. 66, 67

हुआ। गायत्री जप का फल, योगी याज्ञवल्क्य द्वारा इस प्रकार वर्णित है— ''प्रतिदिन सात बार के जप से देवी शरीर को पवित्र करती हैं। दस बार के जप से स्वर्गलोक की प्राप्ति करातीं, बीस बार के जप से शिवलोक पहुँचातीं और एक सौ आठ बार के जप से जन्म समुद्र से पार कर देती हैं। महर्षि मनु द्वारा, ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ को प्रतिदिन एक सौ आठ और वानप्रस्थ तथा सन्न्यासी को दो-दो सहस्र जप करने को कहा गया है।''[१]

जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिः, आदि वाक्य जप की महत्ता घोषित करते हैं। जपकाल में पालनीय नियम इस भाँति कहे गए हैं। (१) बिना गिनती का जप ''आसुर'' कहा गया है, अतः करमाला अथवा रुद्राक्ष-माला द्वारा प्रतिदिन निश्चित संख्या में जप करें। आज समयाभाव है, कल दो माला जप लेंगे, यह प्रक्रिया सम्पूर्ण जप निष्फल कर देती है।

(२) रुद्राक्षमाला—हरी मटर से छोटे दाने जप के अनुपयुक्त कहे गए हैं। माला सदैव गोमुखी में रखें अथवा दायें कन्धे पर स्थित उत्तरीय वा अँगोंछे से ढककर जप करें। जप की माला के विषय में आदेश है— गुरुञ्चापि न दर्शयेत्। अतः इसे कभी किसी को न दिखायें। न स्वयम् कण्ठ में धारण करें। कण्ठ में धारण करने की माला छोटे दानों की हो सकती है। ऐसी अनुश्रुति है कि इस में सुमेरु नहीं होता। क्यों? कि इस से जप की गणना नहीं की जाती। जपमाला सुमेरु के अतिरिक्त १०८ दानों की होते हुए भी जप गणना मात्र १०० की होती है। आठ अतिरिक्त दाने जप में हुए स्खलन-दोष के शमनार्थ हैं।

गायत्री के जप से पूर्व सन्ध्योपासन परम आवश्यक है। उपलब्ध सन्ध्योपासन के अनेक संस्करणों के अवलोकन से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि प्रारम्भ में वैदिक मन्त्रों से गठित पद्धति का अनेक अधिकारी पुरुषों द्वारा यथेष्ट उपबृंहण किया गया है। हुं, फट् जैसे पल्लव, तन्त्र प्रभाव को व्यक्त करते हैं। प्रस्तुत कृति में इन्हें छोड़ दिया गया है। न्यास पद्धति अन्य विषय है। सर्वथा भिन्न।

सन्ध्योपासन प्रक्रिया में भगवती गायत्री के ध्यानपरक श्लोकों का अनुवाद मात्र देने का उद्देश्य है—उपासक निमीलित नेत्र स्थित होकर भगवती के रूप का ध्यान करे। मात्र श्लोकों का पाठ व्यर्थ ही होगा। यथा-

---

१. द्रष्टव्यः गीता प्रेस का नित्यकर्म-प्रयोग, पृ० ३८/३९

प्राप्त ग्रन्थों के अवलोकन से भगवती गायत्री के ध्यानश्लोकों में निम्नलिखित श्लोक पञ्चमुखी देवी का रूप प्रस्तुत करता है—

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै,
र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां, तत्त्वात्मवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशा, शुभ्रं कपालं गुणं,
शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं, हस्तैर्वहन्तीं भजे॥

(आह्निकसूत्रावलिः पृ० ७३)

उल्लिखित ध्यान के विषय में स्वामी शिवानन्द का कथन है—

There are three varieties of Gayatri pictures for meditation in morning, noon and evening. Many meditate on the fivefaced Gayatri only through out the day.[1]

प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकालीन ध्यान के तीन प्रकार हैं। बहुत से लोग पूरे दिन केवल (पूर्वोक्त) पञ्चमुखी गायत्री का ध्यान करते हैं। कतिपय सङ्ग्रहों में ध्यानश्लोक नहीं देखे जाते। प्रत्युत सविता के तेज, भर्गो देवस्य, का ध्यान करते हुए जप करने को कहा गया है। उपासक गुरूपदेश अथवा आन्तरिक प्रेरणानुसार कोई एक विधि अपना सकते हैं।

मध्याह्न सन्ध्या के आचमन का 'असतां च प्रतिग्रह' वाक्य स्पष्ट करता है कि, मध्याह्न सन्ध्योपासन, मात्र ब्राह्मणों का कर्तव्य है। क्यों? कि क्षत्रिय और वैश्य प्रतिग्रह के अधिकारी नहीं है। अतः उनके लिए मध्याह्न सन्ध्या अनावश्यक है।

सन्ध्योपासन के पश्चात् निश्चित संख्या में गायत्री मन्त्र का जप करने को कहा जा चुका है। जप सम्बन्धी ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं। ''यद्यपि वेदादि शास्त्रों में ऐसे अनेक मन्त्र हैं जिनका साधन करके द्विजवर्ग सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है तथापि वेदमाता गायत्री की महिमा सबसे अधिक है। शौनकीय ऋग्विधान में तो यहाँ तक कहा गया है—

प्रथमं लक्षगायत्रीं सप्तव्याहृतिसम्पुटाम्।
ततः सर्वैर्वेदमन्त्रैः सर्वसिद्धिञ्च विन्दति॥

अर्थात् सप्तव्याहृतियों से सम्पुटित गायत्री मन्त्र का एक लाख जप किये बिना कोई भी वेदमन्त्र सिद्धिप्रद नहीं हो सकता।''[२] ''पद्म और

1. The Kalyan Kalptaru, April 1994, p. 731
२. पण्डितप्रवर श्री द्वारकाप्रसाद जी चतुर्वेदी, कल्याण, साधनाङ्क, (वर्ष १९४०) पृ० ६१५

नारदीय पुराण में कहा गया है कि, अन्य समस्त यज्ञ वाचिक जप की तुलना में सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं हैं। वाचिक जप से सौ गुना उपांशु और सहस्र गुना मानस जप का फल होता है। मानस जप वह है, जिसमें अर्थ का चिन्तन करते हुए मन से ही मन्त्र के वर्ण, स्वर और पदों की बार-बार आवृत्ति की जाती है। उपांशु जप में कुछ-कुछ जीभ और होंठ चलते हैं। अपने कानों तक उनकी ध्वनि सीमित रहती है। वाचिक जप, वाणी द्वारा उच्चारण है। तीनों ही प्रकार के जपों में मन के द्वारा इष्टदेव अथवा देवी का चिन्तन होना चाहिए। मानसिक स्तोत्र-पाठ और ज़ोर-ज़ोर से उच्चारण करके किया गया मन्त्र-जप दोनों ही निष्फल हैं। गौतमीय तन्त्र में कहा गया है, वह तो उसकी जड़ता या पशुता है। सुषुम्णा के द्वारा उच्चारित होने पर उसमें शक्ति सञ्चार होता है। पहले ऐसी भावना करनी चाहिए कि मन्त्र का एक-एक अक्षर चिच्छक्ति से ओतप्रोत है और परम अमृत स्वरूप चिदाकाश में उसकी स्थिति है। ऐसी भावना करते हुए जप करने से पूजा, होम आदि के बिना ही मन्त्र अपनी शक्ति प्रकाशित कर देते हैं। मन्त्रजप करने की यही विधि है कि प्राणबुद्धि से सुषुम्णा के मूलदेश में स्थित जीवरूप से मन्त्र का चिन्तन करके मन्त्रार्थ और मन्त्र चैतन्य के ज्ञानपूर्वक उनका जप किया जाय। कुलार्णवतन्त्र में भगवान् शङ्कर ने कहा है—मन एक जगह, शिव दूसरी जगह, शक्ति तीसरी जगह और प्राण चौथी जगह, ऐसी स्थिति में मन्त्रसिद्धि की क्या सम्भावना है ? अत: इन सब को एकत्र चिन्तन करते हुए ही जप करना चाहिए।''

मन्त्रानुष्ठान कर्ता को निषिद्ध आचरणों के विषय में सूचित करते हुए कहा गया है—''और भी बहुत से नियम हैं, उन्हें जानकर यथाशक्ति उनका पालन करना चाहिए। किन्तु यह सब नियम मानस जप के लिए नहीं है। शास्त्रकारों ने कहा है—

अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन्नपि।
मन्त्रैकशरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्यसेत॥
न दोषो मानसे जाप्ये सर्वदेशेऽपि सर्वदा।

अर्थात् मन्त्र के रहस्य को जानने वाला जो साधक एक मात्र मन्त्र की ही शरण हो गया है वह चाहे पवित्र हो या अपवित्र, चलते-फिरते, उठते-

बैठते, सोते-जागते मन्त्र का अभ्यास कर सकता है। मानस जप में किसी भी समय और स्थान को दोषयुक्त नहीं समझा जाता।''[१] आदि।

सन्ध्योपासन एवं मन्त्रानुष्ठान का विषय विस्तृत तथा बहुआयामी है। अधिकारी विद्वानों द्वारा विरचित सन्ध्योपासन तथा तर्पणादि के संग्रह सहज सुलभ हैं। तथापि मादृश पल्लवग्राही की इस अनधिकार चेष्टा का एक कारण है। अनेक युवक जिज्ञासुओं द्वारा सुना जाता है—क्या करें? कहीं केवल संस्कृत, कहीं टीका है भी तो प्रक्रिया का निर्देश नहीं है। आदि।

प्रस्तुत संग्रह का उद्देश्य ऐसी आपत्तियों का निराकरण है। जितने अंशो में भी हो सका हो, उसका श्रेय सहयोगी पं० ब्रजकिशोर मणि त्रिपाठी और दी०द०उ० गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर के संस्कृत विभाग के कृतकार्य आचार्य एवं अध्यक्ष डा० दशरथ द्विवेदी को है। सीमित ज्ञान और प्रमादजन्य त्रुटियों के विषय में आशा है, सुधीजन क्षमा करते हुए सूचित करने की कृपा करेंगे। अलमति विस्तरेण।

आषाढ़ शुक्ला ११, २०५९   विद्वज्जन कृपाकांक्षी
दि० २०/७/२००२ ई०   **देवेन्द्रनाथ शुक्ल**

---

१. पद्म और नारदीय पुराण—दोषयुक्त नहीं समझा जाता। कल्याण, साधनाङ्क, (१९४० ई०) पृ० २२०

श्रीः

सन्ध्योपासन तथा तर्पण के आवश्यक उपकरण तथा अन्य ज्ञातव्य—

धोती, अँगोछा।

आसन—कुशासन, मृगचर्म, कम्बल अथवा मात्र कम्बल।

पात्र—बड़ा लोटा, पञ्चपात्र (गिलास) आचमनी, गाय के कान की आकृति का अर्घ्यपात्र, चन्दनादि के लिए पाँच छोटी कटोरियाँ तथा ताँबे की एक बड़ी थाली। समर्थजन सोने-चाँदी के पात्रों का प्रयोग कर सकते हैं। काँसा (फूल) के बर्तनों का प्रयोग केवल तर्पण के समय किया जा सकता है। किन्तु लौह, सीसा, टीन, राँगा एवम् पीतल के पात्रों का प्रयोग सर्वथा वर्जित है।

पवित्री—कुशों से बनायी जाती है किन्तु इस में स्थायित्व न होने के कारण धातुमयी पवित्रियाँ परिकल्पित की गईं। धातुमयी पवित्री सोलह रत्ती[१] से अधिक वज़न की होनी चाहिए। (१) ताँबे की अँगूठी अनामिका में धारण करें। (२) चाँदी की अँगूठी तर्जनी में पहनें। (३) सोने की अँगूठी अनामिका में पहनें। (४) ताँबा, चाँदी और सोना क्रमशः १२, १६ और १० रत्ती के वज़न में पुष्यार्क अथवा गुरुपुष्य योग में एकत्र गलवाकर दायीं तर्जनी के नाप की अँगूठी बनवाकर उसी दिन धारण करलें। उक्त योग ३८ रत्ती का है अतः इस से १९ रत्ती की दो पवित्रियाँ बनेंगी। यह सर्वोत्तम पवित्री है।

उपासना काल तथा दिशाएँ—प्रातः सन्ध्या की उपासना सूर्योदय के पूर्व से दिन के प्रथम प्रहर तक करें। मध्याह्न सन्ध्या दोपहर के भोजन के बाद करें। सायं सन्ध्या सूर्यास्त के किञ्चित् पहले से गोधूलि वेला तक करें। किसी काल की उपासना में विलम्ब हो जाने पर पहले एक अतिरिक्त अर्घ्य दें। तीनों काल की उपासना पूर्वाभिमुख ही बैठकर करें। उत्तर दिशा अथवा ईशानकोण (पूर्वोत्तर) के अभिमुख भी बैठ सकते हैं। केवल

१. आठ चावल = १ रत्ती

पद्मासन, सिद्धासन अथवा स्वस्तिकासन में ही बैठें। बार-बार आसन बदलते रहना उचित नहीं है।

शिखा बन्धन—गायत्री मन्त्र पढ़ते हुए करें। शिखा न रह गई हो तब भी उस स्थान को दायें हाथ की उँगलियों से स्पर्श करके गायत्री का उच्चारण करें।

जल—स्वच्छ और शीतल हो। झाग, बुलबुलों वाला तथा वर्षा का जल सन्ध्यातर्पण देवपूजादि में प्रयोग करने का निषेध है। जल पूरित लोटे में तुलसीपत्र, सफेद फूल, श्वेत चन्दन छोड़कर, दायें हाथ से ढककर पवित्र नदियों को आवाहित करते हुए पाठ करें—

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि, सरस्वति।
नर्मदे, सिन्धो, कावेरि, जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु॥

सन्ध्योपासन के पश्चात्, गिलास अथवा पञ्चपात्र में बचा जल फेंक दें। यह अशुद्ध होता है।

●

॥ यजुर्वेदीय सन्ध्या-तर्पण पद्धति ॥

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

भावार्थ—मनुष्य पवित्र, अपवित्र अथवा जिस किसी भी दशा में स्थित हो जो कमलनयन भगवान् विष्णु का स्मरण करता है वह बाहर और भीतर सब ओर से शुद्ध हो जाता है।

प्रक्रिया—बायीं हथेली में जल लेकर दायें हाथ की मध्यमा एवं अनामिका उँगलियों से अपने ऊपर जल छिड़कते हुए उल्लिखित मन्त्र पढ़ें।

सङ्कल्प—ॐ तत्सदद्यैतस्य ब्रह्मणोह्नि द्वितीयपरार्धे, श्रीश्वेत-वाराहकल्पे, वैवस्वतमन्वन्तरे, जम्बूद्वीपे, भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते अमुकक्षेत्रे, कलियुगे, कलिप्रथमचरणे, अमुक संवत्सरे, अमुकमासे, अमुकपक्षे, अमुकतिथौ, अमुकवासरे, अमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुक शर्मा, वर्मा, गुप्तोऽहं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातः-मध्याह्न-सायं सन्ध्योपासनकर्म करिष्ये।

भावार्थ—ॐ वही (परमात्मा) सत्य है। ब्रह्मा के दिन के दूसरे आधे भाग में, श्वेतवाराहकल्प के वैवस्वत मनु के काल में, जम्बूद्वीप के भरतखण्ड में आर्यावर्त देश के अन्तर्गत अमुक क्षेत्र में, कलियुग के प्रथम चरण के अमुक संवत्सर के अमुक मास, पक्ष, तिथि एवं अमुक दिन को अमुक गोत्र में उत्पन्न, अमुक नाम का शर्मा-वर्मा अथवा गुप्त, मैं श्री परमेश्वर की प्रसन्नता हेतु प्रातः, मध्याह्न अथवा सायंकालीन सन्ध्योपासन करूँगा।

प्रक्रिया—उल्लिखित सङ्कल्प का उच्चारण करते हुए अमुक के स्थान पर वर्तमान का उच्चारण करें। जैसे—काशीक्षेत्रे, जयनाम संवत्सरे, फाल्गुन मासे, शुक्लपक्षे, दशम्यांतिथौ, रविवासरे, वसिष्ठ गोत्रोत्पन्न मैं रामदत्त शर्मा प्रातः सन्ध्योपासन कर्म करूँगा। सङ्कल्प वाक्य पूरा हो जाने पर एक आचमनी जल गिरा दें।

विनियोग के विषय में ज्ञातव्य—विनियोग वाक्य की उपादेयता किसी मन्त्र द्वारा किसी विशेष उद्देश्यपूर्ति हेतु, मन्त्र का प्रयोग करते समय

परिलक्षित होती है। मन्त्रों की क्षमता असीम है। एक ही मन्त्र विनियोग के भेद से विविध उद्देश्यों की पूर्ति में सक्षम है। अत: विवक्षित फलाप्ति हेतु मन्त्र प्रयोग से पूर्व विनियोग वाक्य संयुक्त किए गए। वैदिक मन्त्रों से प्रारम्भ होकर विनियोगप्रथा अन्य मन्त्रों से भी जुड़ती गई। प्रत्येक विनियोग वाक्य में प्राय: मन्त्रद्रष्टा ऋषि, मन्त्र का छन्द, अधिष्ठाता देवता एवं मन्त्र के प्रयोग का उद्देश्य समन्वित होता है। ''विनियोग के सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने की है। आजकल विनियोग पढ़कर जल छोड़ने की परिपाटी चल रही है किन्तु जल छोड़ने का शास्त्रों में कहीं विधान नहीं मिलता। उनमें तो ऋषि आदि के स्मरण का ही महत्त्व बताया गया है। इसलिए विनियोग का पाठमात्र ही करना चाहिए; जल छोड़ने की आवश्यकता नहीं है।''[१]

विनियोग—पृथ्वीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषि: सुतलं छन्द: कूर्मोदेवता आसने विनियोग:।

भावार्थ—पृथ्वी, इस मन्त्र के ऋषि मेरुपृष्ठ, छन्दसुतल तथा देवता कूर्म हैं। आसन शुद्धि हेतु यह मन्त्र प्रयुक्त है।

प्रक्रिया—उल्लिखित 'पृथ्वीति' विनियोग वाक्य का केवल पाठ करें।

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वञ्च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्॥

भावार्थ—हे पृथ्वी देवि! तुमने सम्पूर्ण लोकों को धारण कर रखा है और भगवान् विष्णु ने तुम्हें धारण किया है। हे देवि! तुम मुझे धारण करो तथा आसन को पवित्र कर दो।

प्रक्रिया—उक्त मन्त्र पढ़कर आसन पर जल छिड़क दें। आसन शुद्धि के अनन्तर ॐ केशवाय नम: स्वाहा, ॐ नारायणाय नम: स्वाहा, ॐ माधवाय नम: स्वाहा का मन में उच्चारण करते हुए प्रत्येक स्वाहा के पश्चात् एक-एक करके कुल तीन आचमन करें।

विनियोग—ऋतञ्चेति त्र्यृचस्य माधुच्छन्दसोऽघमर्षणऋषिरनुष्टुप्छन्दो भाववृत्तं दैवतमपामुस्पर्शने विनियोग:।

भावार्थ—ऋतञ्च इस तीन ऋचात्मक मन्त्र के ऋषि माधुच्छन्दस् अघमर्षण, छन्द अनुष्टुप् और देवता भाववृत्त हैं। आचमन के उद्देश्य से विनियोग किया गया।

---

१. द्रष्टव्य, नित्यकर्म प्रयोग, पृ० ३०, गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रक्रिया—उक्त विनियोग का केवल पाठ करें।

विशेष—विनियोग परिवर्तन द्वारा निम्नस्थ मन्त्र 'ॐऋतञ्च' का अन्य उद्देश्य से (पापपुरुष के निकालने में) प्रयोग की परम्परा है।

मन्त्र—ॐ ऋतञ्चसत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणिविदधद्विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्र-मसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः॥

भावार्थ—(महाप्रलय के अनन्तर श्वेतवाराहकल्प के आरम्भ में) सब ओर से प्रकाशित तप:स्वरूप परमात्मा से, ऋत तथा सत्य की उत्पत्ति हुई। उसी परमात्मा से ब्रह्मा के रात्रि-दिन प्रकट हुए। उसी से महासागर का आविर्भाव हुआ। समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् दिन और रात्रियों को धारण करनेवाला कालस्वरूप संवत्सर प्रकट हुआ जो कि पलक मारनेवाले जङ्गम प्राणियों और स्थावरों से युक्त समस्त संसार को अपने अधीन रखनेवाला है। इसके बाद सबको धारण करनेवाले परमेश्वर ने सूर्य, चन्द्रमा, स्वर्गलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा महर्लोक आदिलोकों की भी पूर्वकल्प की भाँति सृष्टि की।

प्रक्रिया—उल्लिखित मन्त्र को पढ़कर एक आचमन करें। आचमन के पश्चात् निम्नलिखित (४) विनियोग वाक्यों का यथाक्रम पाठ करें।

१ **विनियोग**—ॐ कारस्य ब्रह्माऋषिर्दैवीगायत्रीछन्दोऽग्निर्देवता शुक्लोवर्ण:सर्वकर्मारम्भे विनियोग:।

भावार्थ—ॐकार के ऋषि ब्रह्मा, छन्द दैवी गायत्री, देवता अग्नि और वर्ण श्वेत है। सभी कार्यों के आरम्भ हेतु विनियोग किया गया।

२. **विनियोग**—सप्तव्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाज़गौतमात्रि-वसिष्ठकश्यपाऋषयो गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपंक्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांस्यग्नि-वाय्वादित्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवादेवता अनादिष्टप्रायश्चित्त प्राणायामे विनियोग:।

भावार्थ—भूर्, भुवर्, स्वर्, महर्, जन, तप एवं सत्य नामक सात व्याहृतियों के विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ तथा कश्यप ये सात ऋषि और गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती छन्द, क्रमश: अग्नि, वायु, सूर्य, बृहस्पति, वरुण, इन्द्र और

विश्वेदेव देवता हैं। उक्त व्याहृतियों का विनियोग प्राणायाम द्वारा ऐसे पापों को विनष्ट करने हेतु किया गया जिनका कोई प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है।

३. **विनियोग**—गायत्र्या विश्वामित्रऋषिर्गायत्रीछन्दः सविता-देवताग्निर्मुखमुपनयने प्राणायामे विनियोगः।

भावार्थ—गायत्री मन्त्र के ऋषि विश्वामित्र, छन्द गायत्री, देवता सूर्य, एवं मुख अग्नि हैं। उपनयन संज्ञक प्राणायाम हेतु विनियोग किया गया।

४. **विनियोग**—शिरसः प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिपदागायत्रीछन्दो, ब्रह्माग्नि-वायुसूर्यादेवताः यजुः प्राणायामे विनियोगः।

भावार्थ—शिरसः से प्राणायाम के मन्त्र के चौथे (ॐआपो ज्योती) चरण का तात्पर्य है। इस के ऋषि प्रजापति छन्द त्रिपदा गायत्री, देवता, ब्रह्मा, अग्नि, वायु एवं सूर्य हैं। यजुष् संज्ञक प्राणायाम हेतु विनियोग किया गया।

प्राणायाम का मन्त्र—ॐभूः, ॐभुवः, ॐस्वः, ॐमहः, ॐजनः, ॐतपः, ॐसत्यम्, ॐतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐआपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरोम्॥

भावार्थ—हम सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करनेवाले निरतिशय प्रकाशमय परमेश्वर के भजनेयोग्य तेज का ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धि को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करते हैं और जो भूर्, भुवर, स्वर, महर्, जन, तप और सत्य नामक समस्त लोकों में व्याप्त हैं तथा जो सच्चिदानन्दस्वरूप जल रूप से जगत् के पालक, अनन्त तेज के धाम, रसमय, अमृतमय और भूर्भुवः स्वः स्वरूप (त्रिभुवनात्मक) ब्रह्म हैं।

प्रक्रिया—मूलाधार से ग्रीवा तक सिर को सीधा रखते हुए, दाहिने हाथ के अँगूठे से नासिका का दायाँ छिद्र बन्द करके बायें छिद्र से धीरे-धीरे वायु को अन्दर खीचें, साथ ही नाभि देश में नीलकमल के समान, चतुर्भुज भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए उल्लिखित प्राणायाम के मन्त्र का एक बार मन ही मन उच्चारण कर जाँय। इस 'पूरक' प्राणायाम के बाद अनामिका और कनिष्ठिका अँगुलियों से नासिका के बायें छिद्र को भी बन्द करके श्वास रोककर प्राणायाम का मन्त्र एक बार पुनः पढ़ जायँ। इस समय हृदय के मध्य रक्त कमल के आसन पर विराजमान अरुण-गौर वर्ण के चतुर्मुख ब्रह्माजी का ध्यान करें। इस 'कुम्भक' प्राणायाम के पश्चात्

अँगूठा हटाकर दायें नासापुट से श्वास छोड़ते हुए एक बार पुनः प्राणायाम का मन्त्र पढ़ जाँय। इतनी धीमी गति से श्वास छोड़ें कि नाक के सामने की हथेली में रखा सत्तू न उड़े। यह 'रेचक' प्राणयाम हुआ। पूरक-कुम्भक तथा रेचक करते समय प्राणायाम के मन्त्र का केवल एक-एक बार का पाठ आरम्भ करनेवाले व्यक्ति हेतु निर्दिष्ट है। मन्त्र का तीन-तीन बार उच्चारण कर सकने तक का अभ्यास किया जा सकता है। अधिकाधिक की चेष्टा हानिकारक हो सकती है। 'रेचक' करते समय ललाट प्रदेश में स्फटिक की भाँति श्वेतवर्ण, त्रिनेत्र, भगवान् शङ्कर का ध्यान करें।

विनियोग—सूर्यश्च मेति नारायण ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः सूर्योदेवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

भावार्थ—सूर्यश्च मन्त्र के ऋषि नारायण, छन्द अनुष्टुप् तथा देवता सूर्य हैं। आचमन हेतु मन्त्र का विनियोग किया गया।

प्रक्रिया—विनियोग वाक्य का केवल उच्चारण करें।

मन्त्र—ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षान्ताम्। यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहमापोऽमृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा॥

भावार्थ—सूर्य, क्रोध के देवता और क्रोध के स्वामी—ये सब क्रोधवश किए गए पापों से मेरी रक्षा करें। (अर्थात् कृत पापों को नष्ट करके होनेवाले पापों से मुझे बचावें)। मैंने रात में मन, वाणी, हाथ, पैर, उदर और शिश्न इन्द्रिय से जो पाप किये हों उन सब को रात्रिकालाभिमानी देवता नष्ट करें। जो कुछ भी पाप मुझमें है, उसे मैं प्रकाशमय सूर्यरूप परमेश्वर में हवन करता हूँ।

प्रक्रिया—मन्त्र को पढ़कर एक आचमन कर लें।

ज्ञातव्य—उल्लिखित 'ॐ सूर्यश्च' मन्त्र प्रातःकाल की सन्ध्या का है। अगर मध्याह्नकाल की सन्ध्या कर रहे हैं तो इसके स्थान पर निम्नलिखित विनियोग वाक्य का उच्चारण करके तत्पश्चात् 'ॐआपः पुनन्तु' मन्त्र द्वारा एक आचमन करें। इसी भाँति सायङ्कालीन सन्ध्या के साथ, प्राणायाम के पश्चात् 'अग्निश्च' मन्त्र का विनियोग करके मन्त्र द्वारा आचमन किया जायेगा। मध्याह्नकाल की सन्ध्या दोपहर के भोजन के पश्चात् की जाती है।

मध्याह्न का विनियोग—आपः पुनन्त्विति नारायणऋषिरनुष्टुप् छन्दः आपः पृथिवी ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्म च देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः

भावार्थ—आपः पुनन्तु मन्त्र के ऋषि नारायण, छन्द अनुष्टुप्, तथा जल-पृथिवी-ब्रह्मणस्पति और ब्रह्म देवता हैं। आचमन के उद्देश्य से विनियोग किया गया।

प्रक्रिया—उल्लिखित विनियोग मन्त्र का केवल पाठ करें। तदनन्तर निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करके एक आचमन करें।

आचमन मन्त्र—ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रह ँ स्वाहा॥

भावार्थ—जल पृथिवी को पवित्र करे। पवित्र हुई पृथिवी मुझे पवित्र करे। वेदस्वामी परमात्मा पृथिवी को पवित्र करें। ब्रह्म द्वारा पवित्र की गई पृथिवी मुझे पवित्र करे। मेरे द्वारा किया गया उच्छिष्ट अथवा अभक्ष्य भक्षण और मेरे अतिरिक्त पाप तथा नीच पुरुषों से लिए दान-दोष को दूर करके जल मुझे पवित्र कर दे।

सायंकाल के सन्ध्योपासन का विनियोग वाक्य—अग्निश्च मेति नारायणऋषिः प्रकृतिश्छन्दोऽग्निर्मन्युः मन्युपतयोऽहश्च देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

भावार्थ—अग्निश्च मन्त्र के ऋषि नारायण, छन्द, प्रकृति, अग्नि, क्रोध, क्रोध के स्वामी एवं दिन, देवता हैं। आचमन हेतु मन्त्र का विनियोग किया गया।

प्रक्रिया—पूर्ववत् विनियोग वाक्य का पाठ मात्र करें।

आचमन का मन्त्र—ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्ना पापमकार्षं मनसा, वाचा, हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा।

भावार्थ—अग्नि, क्रोध और क्रोध के स्वामी—ये सभी क्रोधवश किये गए पापों से मेरी रक्षा करें। मैंने दिन में मन, वाणी, हाथ, पैर, उदर और शिश्न इन्द्रिय से जो पाप किये हों उन सबको दिन के अभिमानी देवता

नष्ट करें। मुझमें जो भी पाप है उसे मैं मोक्ष के कारणभूत सत्यस्वरूप प्रकाशमय परमेश्वर में हवन करता हूँ।

प्रक्रिया—उल्लिखित मन्त्र का पाठ करके एक आचमन करें।

मार्जन का विनियोग—आपो हि ष्ठेति त्र्यृचस्य सिन्धुद्वीप ऋषिर्गायत्री छन्द आपो देवता मार्जने विनियोगः।

भावार्थ—आपो हि ष्ठा आदि नव चरणोंवाली तीन ऋचाओं के ऋषि सिन्धुद्वीप, छन्दगायत्री तथा देवता जल हैं। मार्जन (अपने ऊपर जल छिड़कने) हेतु विनियोग किया गया।

प्रक्रिया—विनियोग वाक्य का पाठ करें। तदनन्तर बायीं हथेली में जल लेकर, दायें हाथ की (मध्यमा से कनिष्ठिका सहित) तीन अङ्गुलियों से निम्नलिखित ऋचाओं से सिर पर जल छिड़कें। केवल आठवीं ऋचा 'ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ' का उच्चारण करके जल पृथ्वी पर छिड़कना है।

मार्जन ऋचाएँ—ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः। ॐ ता न ऊर्जे दधातन। ॐ महेरणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः। ॐ तस्य भाजयतेह नः। ॐ उशतीरिव मातरः। ॐ तस्मा अरंगमाम वः। अब आठवीं ऋचा, 'ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ' का उच्चारण करके जल भूमि पर छिड़क दें। पुनः 'ॐ आपो जनयथा च नः' का जल अपने सिर पर छिड़कें।

भावार्थ—हे जल! तुम निश्चय ही कल्याणकारी हो अतः अन्नादि के रसों द्वारा बलवृद्धि हेतु तथा अत्यन्त रमणीय परमात्मदर्शन हेतु तुम हमारा पालन करो। जिस प्रकार पुत्रों की तुष्टि चाहनेवाली माताएँ उन्हें अपने स्तनों का दूध पिलाती हैं उसी प्रकार तुम्हारा जो परम कल्याणमय रस है, हमें उसका भागी बनाओ। हे जल! जगत् के जीवनाधारभूत जिस रस के एक अंश से तुम समस्त विश्व को तृप्त करते हो, उस रस से हम पूर्ण तृप्ति प्राप्त करें। हे जल! हमें उस रस का भोक्ता बनाओ।

विनियोग—द्रुपदादिवेत्यस्य कोकिलोराजपुत्रऋषिरनुष्टुप्छन्दः आपो देवताः मार्जने विनियोगः।

भावार्थ—द्रुपदादिव मन्त्र के ऋषि कोकिलराजपुत्र, छन्द अनुष्टुप् तथा देवता जल हैं। मार्जन के उद्देश्य से विनियोग किया गया।

प्रक्रिया—उक्त विनियोग वाक्य का पाठ करें।

मार्जन मन्त्र—ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥

भावार्थ—जैसे पादुका (खड़ाऊँ या जूता) छोड़ देने पर मनुष्य पादुका के मलादि दोषों से मुक्त हो जाता है, जिस प्रकार पसीने से भींगा मनुष्य स्नान करके शुद्ध हो जाता है तथा जैसे पवित्र (अनामिका में धारित कुश अथवा तर्जनी में पहनी सोने की अँगूठी, चाँदी या छिंगुनिया में धारण की गई गैंडा की सींग की अँगूठी) धारण करके शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार जल मुझे शुद्ध करे।

प्रक्रिया—बायें हाथ में जल लेकर दायें हाथ से ढककर, उल्लिखित मन्त्र को एक बार पढ़कर, जल को अभिमन्त्रित करके दायें हाथ की उँगलियों से सिर पर छिड़क लें।

विनियोग वाक्य—अघमर्षणसूक्तस्याघमर्षणऋषिरनुष्टुप्छन्दो भाववृत्तो देवता पापपुरुषनिरसने विनियोगः।

भावार्थ—अघमर्षण सूक्त के ऋषि अघमर्षण, छन्द अनुष्टुप् तथा देवता भाववृत्त हैं। पापपुरुष के निकाल देने के उद्देश्य से विनियोग किया गया।

ध्यातव्य एवं प्रक्रिया—इसी सूक्त का विनियोग आचमन हेतु भी (देखें, पृ० ३) हुआ है। विनियोग वाक्य का मात्र पाठ करें।

अघमर्षण मन्त्र—ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्य जायत। ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥

प्रक्रिया—दायें हाथ में जल लेकर नाक में लगायें और श्वास रोककर उल्लिखित मन्त्र को तीन या एक बार पढ़कर मन ही मन यह भावना करें कि यह जल नाक के बायें छिद्र से भीतर घुसकर अन्तःकरण के पाप को दायें छिद्र से बाहर निकाल रहा है, फिर उस जल को न देखते हुए (आँख मूँदकर) अपनी बायीं ओर फेंक दें अथवा बायीं ओर शिला की भावना करके उस पर उस पाप को पुरुष रूप से कल्पित करके पटककर नष्ट कर दें।

विनियोग—अन्तश्चरसीति तिरश्चीन ऋषिरनुष्टुप् छन्द आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

भावार्थ—अन्तश्चरसि मन्त्र के ऋषि, तिरश्चीन, छन्द अनुष्टुप् तथा देवता जल हैं। आचमन हेतु विनियोग किया गया।

प्रक्रिया—उक्त विनियोग वाक्य का पाठ करें, फिर निम्नांकित मन्त्र को पढ़कर एक आचमन करें।

आचमन मन्त्र— ॐ अन्तश्चरसिभूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम्॥

भावार्थ—हे जलरूप परमात्मन्! तुम समस्त प्राणियों की हृदयगुहा में विचरते हो, तुम्हारा मुख सभी ओर है, तुम्हीं यज्ञ हो, तुम्हीं वषट्कार (इन्द्रादि देवों का यज्ञभाग संवाहक शब्द) हो और तुम्ही जल, प्रकाश, रस एवं अमृत हो।

निम्नांकित विनियोग वाक्य का पाठ मात्र करें।

विनियोग—ॐ कारस्य ब्रह्मऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता तिसृणां महाव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्या देवताः, तत्सवितुरिति विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता सूर्यार्घ्यदाने विनियोगः।

भावार्थ—ॐकार के ऋषि परब्रह्म, दैवी गायत्रीछन्द, देवता परमात्मा, तीनों महाव्याहृतियों (भूर्, भुवर्, स्वर्) के ऋषि प्रजापति, छन्द गायत्री, उष्णिक् और अनुष्टुप् तथा देवता अग्नि, वायु और सूर्य हैं, 'तत्सवितु—प्रचोदयात्' पर्यन्त के ऋषि विश्वामित्र, छन्द गायत्री, तथा देवता सूर्य हैं। सूर्यदेव को अर्घ्यदान हेतु मन्त्र का विनियोग किया गया।

प्रक्रिया—विनियोग वाक्य के उच्चारण के पश्चात् दोनों हाथों में पुष्प और जल युक्त अर्घ्य पात्र लेकर "ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्, ब्रह्मस्वरूपिणे सूर्यनारायणाय इदमर्घ्यं दत्तं न मम" का प्रत्येक बार उच्चारण करते हुए भगवान् सूर्यदेव को तीन अर्घ्य दें। ब्रह्मस्वरूपिणे, वाक्य का आशय है—ब्रह्मस्वरूप सूर्यनारायण को यह अर्घ्य दिया गया। यह मेरा नहीं है। प्रातः और मध्याह्न का अर्घ्य जल में देना चाहिए। परन्तु सायंकाल का अर्घ्य कदापि जल में न दें। इसे शुष्क भूमि या पात्र में गिराना चाहिए। प्रातः एवं सायंकाल के अर्घ्य तीन-तीन एवं मध्याह्न में केवल एक अर्घ्य देना चाहिए। यदि समय (प्रातः सूर्योदय से तथा सूर्यास्त से तीन घड़ी = ७२ मिनट) का अतिक्रमण हो जाय तो प्रायश्चित्त

स्वरूप नीचे लिखे मन्त्र से एक अर्घ्य पहले देकर तब उक्त अर्घ्य दें—ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ।[1] अर्घ्यदान के अनन्तर सूर्योपस्थान के उद्देश्य से निम्नाङ्कित विनियोग वाक्य का उच्चारण करें।

(१) **विनियोग**—उद्वयमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सूर्योदेवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

भावार्थ—उद्वयं मन्त्र के ऋषि प्रस्कण्व छन्द अनुष्टुप् तथा देवता सूर्य हैं। भगवान् सूर्यदेव की उपस्थिति हेतु विनियोग किया गया।

प्रक्रिया—दोनों हाथों की अञ्जलि बनाकर निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करें।

मन्त्र (१) ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।

भावार्थ—हम अन्धकार से ऊपर उठकर उत्तम स्वर्गलोक को तथा देवताओं में अत्यन्त उत्कृष्ट सूर्यदेव को भली-भाँति देखते हुए उस सर्वोत्तम ज्योतिर्मय परमात्मा को प्राप्त हों।

प्रक्रिया—मन्त्र का पाठ करते हुए सूर्यदेव का ध्यान करें। सम्भव हो तो सूर्यदेव का दर्शन करते रहें। प्रातः तथा सायंकाल में उपस्थान के मन्त्र पढ़ते समय दोनों हाथों से अञ्जलि बनाये रहें। मध्याह्नकाल में दोनों भुजाएँ ऊपर उठी रहें।

विनियोग—(२) उदु त्यमिति प्रस्कण्व ऋषिर्निचृद्गायत्री छन्दः सूर्योदेवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

भावार्थ—ॐ उदु त्य मन्त्र के ऋषि प्रस्कण्व, निचृद्गायत्री छन्द तथा देवता सूर्य हैं। सूर्यदेव की उपस्थिति हेतु विनियोग किया गया। पूर्ववत् अञ्जलि बनाकर निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करें।

मन्त्र—(२) ॐ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम्॥

भावार्थ—उत्पन्न हुए समस्त प्राणियों के ज्ञाता सूर्यदेव को छन्दोमय अश्व, सम्पूर्ण जगत् को उनका दर्शन कराने के लिए (दृष्टि प्रदान करने के लिए) शीघ्रगति से ऊपर-ही-ऊपर लिए जा रहे हैं।

---

१. पं० श्री रामभवन, श्रीलालविहारीजी मिश्र, नित्यकर्म-पूजाप्रकाश, पृ० ६४, गीताप्रेस, गोरखपुर।

विनियोग—(३) चित्रमित्यस्य कुत्साङ्गिरसऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

भावार्थ—चित्रं मन्त्र के ऋषि कुत्साङ्गिरस, छन्द त्रिष्टुप् तथा देवता सूर्य हैं। सूर्यदेव की उपस्थिति हेतु विनियोग किया गया। विनियोग वाक्य के उच्चारण के पश्चात् पूर्ववत् अञ्जलि बनाए हुए निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करें।

मन्त्र—(३) ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

भावार्थ—जो तेजमयी किरणों के पुञ्ज हैं, मित्र, वरुण तथा अग्नि आदि देवों एवं समस्त विश्व के नेत्र हैं और स्थावर तथा जङ्गम, सब के अन्तर्यामी आत्मा हैं, वे भगवान् सूर्य, आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष को अपने प्रकाश से परिपूर्ण करते हुए आश्चर्य रूप से उदित हुए हैं।

विनियोग—(४) तच्चक्षुरिति दध्यङ्ङथर्वण ऋषिरेकाधिका ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः सूर्योदेवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

भावार्थ—तच्चक्षु मन्त्र के ऋषि दध्यङ्ङथर्वण, छन्द, एकाधिका ब्राह्मी त्रिष्टुप् तथा देवता सूर्य हैं। सूर्यदेव की उपस्थिति हेतु विनियोग किया गया। उक्त विनियोग वाक्य का, मात्र उच्चारण करें। अब पूर्ववत् अञ्जलि बनाकर, भगवान् सूर्य की उपस्थिति के उद्देश्य से, निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करें।

मन्त्र—(४) ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शत ँ शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात्॥

भावार्थ—देवगण सहित सम्पूर्ण जगत् का हित करने वाले, सबके नेत्र रूप, तेजोमय भगवान् सूर्य पूर्व दिशा से उदित हो रहे हैं। उनके प्रसाद से हम सौ वर्षों तक देखते रहें, सौ वर्षों तक जीते रहें, सौ वर्षों तक सुनते रहें, सौ वर्षों तक हममें बोलने की शक्ति रहे तथा सौ वर्षों तक हम कभी दीन दशा को प्राप्त न हों। पुनः सौ वर्षों से अधिक काल तक भी हम देखें, जियें, सुनें, बोलें एवं कभी दीन न हों।

निम्नाङ्कित विनियोग वाक्य का उच्चारण करें।

विनियोग—तेजोसीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः, आज्यं देवता, जगती छन्दः यजुर्गायत्र्यावाहने विनियोगः।

भावार्थ—तेजोसि मन्त्र के ऋषि परमेष्ठी प्रजापति, देवता आज्य तथा छन्द जगती है। गायत्री के आवाहन हेतु मन्त्र का विनियोग किया गया।

आवाहन मन्त्र—ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियन्देवानामनाधृष्टन्देवयजनमसि।

भावार्थ—हे सूर्यस्वरूपा गायत्री देवि! तुम तेजोमयी हो, शुद्ध हो और अमृत (नित्य ब्रह्मरूपा) हो। तुम्हीं परम धाम और नामरूपा हो। तुम्हारा किसी से भी पराभव नहीं होता। तुम देवों की प्रिय और उन के यजन की साधनभूता हो। (मैं तुम्हारा आवाहन करता हूँ)।

प्रक्रिया—उल्लिखित 'ॐ तेजोऽसि' मन्त्र का पाठ करते हुए दोनों हाथों की अञ्जलि बनाये रहें एवं भगवती गायत्री को आवाहित करने की भावना करें।

विनियोग—गायत्र्यसीति विवस्वान् ऋषिः स्वराण्महापंक्तिश्छन्दः परमात्मा देवता गायत्र्युपस्थाने विनियोगः।

भावार्थ—गायत्र्यस्य, मन्त्र के ऋषि विवस्वान्, छन्द स्वराट्महापंक्ति तथा देवता परमात्मा हैं। भगवती गायत्री की उपस्थिति हेतु मन्त्र का विनियोग किया गया।

प्रक्रिया—उल्लिखित विनियोग वाक्य के पाठ के पश्चात् निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए भावना करें कि देवी गायत्री और निकट आ गई हैं।

मन्त्र—ॐ गायत्र्यस्येकपदी, द्विपदी, त्रिपदी, चतुष्पद्यपदसि, न हि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरंजसेऽसावदो मा प्रापत्।

भावार्थ—हे गायत्रि! तुम त्रिभुवनरूप प्रथम चरण से एकपदी हो, ऋक्, यजुः एवं सामरूप, द्वितीय चरण से द्विपदी हो। प्राण, अपान तथा व्यानरूप, तृतीय चरण से त्रिपदी और तुरीय ब्रह्मरूप चतुर्थ चरण से चतुष्पदी हो। निर्गुण स्वरूप से अचिन्त्य होने के कारण तुम 'अपद' हो। (इसी कारण वेद नेति-नेति [अन्त नहीं है, अन्त नहीं है] कहकर तुम्हारे

स्वरूप का वर्णन करते हैं।) मन-बुद्धि के अगोचर होने के कारण तुम सबके लिए प्राप्य नहीं हो। तुम्हारे दर्शनीय (अनुभव योग्य) चतुर्थ पद को जो प्रपञ्च से परे, वर्तमान, शुद्ध परब्रह्मस्वरूप है, नमस्कार है। तुम्हारी प्राप्ति में विघ्न डालने वाले राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि पाप मेरे पास न पहुँच सकें। अर्थात् पर ब्रह्मस्वरूपिणी तुम को मैं निर्विघ्न प्राप्त करूँ।

प्रक्रिया—मन्त्र पाठ के उपरान्त उपस्थित भगवती, गायत्री को प्रणाम करें। अब जप के उद्देश्य से निम्नलिखित तीन विनियोग वाक्यों का यथाक्रम पाठ करें।

विनियोग—(१) ॐ कारस्य ब्रह्मऋषि दैंवी गायत्री छन्दोऽग्नि-र्देवता, शुक्लो वर्णो, जपे विनियोगः।

भावार्थ—ॐकार के ऋषि ब्रह्मा, छन्द दैवी गायत्री, देवता अग्नि, तथा वर्ण श्वेत है। जप हेतु विनियोग किया गया।

विनियोग—(२) त्रिव्याहृतीनां प्रजापतिऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् छन्दांस्यग्निवायुसूर्या देवताः, जपे विनियोगः।

भावार्थ—भूर्, भुवर् और स्वर् इन तीनों व्याहृतियों के ऋषि प्रजापति (ब्रह्मा), छन्द गायत्री, उष्णिक् एवं अनुष्टुप् तथा देवता अग्नि, वायु और सूर्य हैं। जप के उद्देश्य से विनियोग किया गया।

विनियोग—(३) गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः।

भावार्थ—गायत्री अर्थात् ''तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्'' के ऋषि विश्वामित्र, छन्द गायत्री तथा देवता सूर्य हैं। जप के लिए विनियोग किया गया।

गायत्री मन्त्र—ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

भावार्थ—हम सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करने वाले देव, सूर्य के भजने योग्य श्रेष्ठ तेज का ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धि को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करे।

प्रक्रिया—उक्त गायत्री मन्त्र का जप प्रारम्भ करें।[१] जप करते समय भगवती गायत्री का ध्यान करते रहें। बृहत्पाराशर के मतानुसार—प्रातःकाल

१. जप सम्बन्धी नियम हेतु देखें, धियो यो नः प्रचोदयात्

की गायत्री का नाम गायत्री है। यह ब्रह्माणी, हंसवाहना, और लालकमल के समान रंग वाली है। लाल कमल पर पद्मासन में विराजमान है। लाल रंग के वस्त्र और आभूषणों से सुशोभित है।

मध्याह्न संध्या के विषय में बृहत्पाराशर का कथन है—इस का नाम सावित्री है। यह गौरी है। वृषवाहना, रुद्राक्षमालाधारिणी, शैलपुत्री, शङ्करप्रिया, त्रिशूलधारिणी, तथा श्वेतवस्त्र और पुष्पों से अलंकृता है।

बृहत्पाराशर के अनुसार—सायंकालीन गायत्री का नाम सरस्वती है। भगवान् विष्णु की यह शक्ति, नीले वर्ण की है। नीले वस्त्र और आभूषणों से विभूषित, शंखचक्रगदाधारिणी, वीणा तथा रुद्राक्षमाला से अलंकृता है।[१] जप समाप्ति के पश्चात्, ''गायत्री जप द्वारा भगवान् सूर्य नारायण प्रसन्न हों, यह मेरा नहीं हैं।'' वाक्य बोलकर जप भगवान् सूर्य को समर्पित कर दें। इस के बाद ॐ उत्तमे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतमूर्धनि। ब्राह्मणे-भ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्॥ हे गायत्री देवि! अब अपने उपासकों, ब्राह्मणों से अनुमति लेकर भूमि पर स्थित मेरु शिखर के अपने वास स्थान में सुखपूर्वक जायें, कहकर भगवती गायत्री का विसर्जन करें।

विसर्जन के पश्चात् संध्योपासनकर्म निम्नलिखित वाक्य बोलकर श्री परमेश्वर को समर्पित कर दें। अनेन संध्योपासनाख्येन कर्मणा श्री परमेश्वरः प्रीयतां न मम।

इस संध्योपासन कर्म से श्री परमेश्वर प्रसन्न हों यह मेरा नहीं है। वाक्य समाप्ति के अनन्तर ''श्री विष्णवे नमः, श्री विष्णवे नमः, श्री विष्णवे नमः॥'' कहकर आसन के नीचे एक आचमनी जल छोड़कर, उसे उँगलियों से स्पर्श करके, गायत्री मन्त्र पढ़कर ललाट में लगालें। यह क्रिया न करने से उपासना का समस्त पुण्यफल इन्द्र ले लेते हैं।

॥ हरिः ॐ तत्सत्॥

---

१. आह्निक सूत्रावलिः, पृ० ४३-४४

तर्पण पद्धति

टीका एवं संक्षिप्त विधि सहित

पितॄणामर्यमा चास्मि

(परिचय) गीता १०/२९

आयन्तु नः पितरः

परिचय

आयन्तु नः पितरः सोम्या सोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः। अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥ यजु० १९/५८॥ यजुर्वेद के उक्त मन्त्र द्वारा पुत्र पितरों को आवाहित करते हुए कह रहा है—सोमपान करने योग्य हमारे अग्निष्वात्त[१] पितृगण, देवयान[२] से यहाँ आवें और इस यज्ञ[३] में स्वधा[४] से तृप्त होकर, हमें मानसिक उपदेश दें तथा वे हमारी रक्षा करें।

उक्त मन्त्र और ऐसे अनेक मन्त्रों द्वारा पितर पूजन की परम्परा वैदिक काल में ही विकसित हो चुकी थी। वेदमन्त्रों के कर्मकाण्ड, उपासना एवं ज्ञानकाण्ड तीन प्रमुख विभाग हैं। कर्मकाण्ड के अनेक मन्त्र पितरों के पूजन एवं स्तवन से सम्बन्धित हैं। गतात्मा की परलोक यात्रा के साथ और्ध्वदैहिक विधियाँ प्रारम्भ होती हैं। कालक्रम से इनमें वैदिक मन्त्रों के साथ, पौराणिक श्लोकों, स्मृतियों के वाक्य, आश्रमधर्म, सम्प्रदाय, लोकाचार और कुलाचार आदि का समावेश होता गया है।

व्यापक अर्थ में देखने पर जीवन का समस्त कार्यकलाप मात्र कर्मकाण्ड के अन्तर्गत देखा जा सकता है। कर्मकाण्ड के अनेक भेद-प्रभेदों की चर्चा सर्वथा अप्रासङ्गिक होगी। हमारा लक्ष्य नित्यकर्म का एक आवश्यक अङ्ग तर्पण मात्र है। महर्षिगण ने कर्मो के तीन प्रमुख वर्ग निश्चित किया है। नित्यकर्म, नैमित्तिक कर्म तथा काम्यकर्म। शौच, स्नान, सन्ध्या,

---

१. अग्निष्वात्त, देहान्त के पश्चात् अग्नि द्वारा दग्ध।

२. देवयान, वह मार्ग जिससे जीवात्मा शरीर से निकलने पर ब्रह्मलोक को जाता है अथवा देवताओं का विमान।

३. यज्ञ, पूजा का कार्य, कोई भी पवित्र या भक्ति सम्बन्धी क्रिया (प्रत्येक गृहस्थ, विशेषतः ब्राह्मण को ऐसे पाँच भक्तिपरक कृत्य नित्य करने होते हैं—भूतयज्ञ, मनुष्य, देव, ब्रह्म एवं पितृयज्ञ, श्राद्ध एवं तर्पण पितृयज्ञ के अङ्ग हैं। इसी कारण मन्त्र में 'यज्ञे' कहा गया है।

४. स्वधा, पितरों को अन्न, जल आदि प्रस्तुत करते समय उच्चारित शब्द। देवगण के 'स्वाहा' का समकक्ष।

तर्पण एवं पञ्चयज्ञ आदि नित्य कर्म कहे गए हैं। असाधारण? कभी-कभी किया जाने वाला ग्रहण स्नान, अवभृथ स्नान आदि कार्य नैमित्तिक तथा धन, पुत्र एवं विद्या आदि की प्राप्ति हेतु किए गए कार्य काम्यकर्म के अन्तर्गत हैं। नित्यकर्म अनिवार्य हैं तथापि विशेष परिस्थिति में नित्यकर्म के स्थगन और स्थिति के अनुसार आचरण का आदेश शास्त्रों में हैं।

तर्पण विधि के सूक्ष्म अवलोकन से हमें सनातन-संस्कृति का सर्वाधिक उज्ज्वल पक्ष दिखाई देता है। ऋषिगण ने अपने अनुभवों द्वारा भावी सन्तानों की सुरक्षा हेतु जिस आचार-संहिता का प्रवर्तन किया उसमें सन्ध्योपासन के अनन्तर तर्पण को स्थान दिया गया है। अन्य सभी उपासनाओं का स्थान तीसरा होने से तर्पण की महत्ता अभिव्यक्त होती है। तर्पण क्रिया में निहित, ऋषिगण की समग्र सृष्टि के प्रति प्रदर्शित उदारता का जो रूप हम देखते हैं, वह अनन्य है। आभारी अथवा 'ऋणी' अनुभव करना फलस्वरूप कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए ऋण चुकाना मनुष्य का कर्त्तव्य है। सन्ध्योपासन की भाँति तर्पण, मात्र द्विजाति सीमित नहीं है। इस के अधिकारी स्त्रियाँ और शूद्र भी हैं।

ऋषिगण द्वारा आचरित एवं आदिष्ट तर्पण क्रम में पितर तर्पण से प्रथम हम देव, छन्द, वेद, ऋषिगण, पुराणों के आचार्य, गन्धर्व, संवत्सर, देवियों, अप्सराओं, देवों के पार्षदों, नागों, सागरों, पर्वतों, नदियों, मनुष्य यक्ष, राक्षस और पिशाचों अनेक पक्षियों, जीवों, पशुओं, वनस्पतियों तथा औषधियों सहित अण्डज, पिण्डज, स्वेदज एवं उद्भिज्ज चार प्रकार के जीव समूह का तर्पण करते हैं। अपने जीवन के लिए हम इन सब का आभार अनुभव करते अतः इन का तर्पण करते हैं। यह जानते-बूझते भी कि—सिन्धु कि तोष जल अञ्जलि दिएँ। किन्तु एक अकिंचन समग्र-सृष्टि के प्रति और कर ही क्या सकता है।

गत आत्मा की तृप्ति एवं मोक्ष हेतु किए जाने वाले श्राद्ध और तर्पण की वैदिक परम्परा का प्रभाव सभी परवर्ती धर्मों में सुस्पष्ट है, किन्तु ऐसा विवेचन हमारा अभीष्ट नहीं है। श्राद्ध? अर्थात् श्रद्धायुक्त पितर-पूजन। श्रद्धा? अर्थात् आस्था, निष्ठा, धार्मिक निष्ठा दैवी सन्देशों में विश्वास। तर्पण? प्रसन्न करना, तृप्त करना, देवों, ऋषियों, मनुष्यदेवों और पितरों, बान्धवों, अन्य जन्म के बान्धवों, अबान्धवों, निज कुल के सन्तानहीन

सगोत्रियों, आदि को चावल, यव तथा तिल मिश्रित जल अथवा केवल तिल-जल देना।

श्राद्ध की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए कहा गया है—जिस कुल में श्राद्ध कर्म छोड़ दिया गया है वहाँ शूरवीर, निरोग तथा दीर्घजीवी लोग नहीं जन्म लेते। ऐसे कुल के लोगों को आनन्द एवं मङ्गल की उपलब्धि नहीं होती।[१]

पितरपूजन वंश-परम्परा को विच्छिन्न होने से बचाए रखने में अद्वितीय है। सन्तानप्राप्ति की विधि का निर्देश इस भाँति किया गया है—पतिव्रता पत्नी, सन्तान कामना से अपने पति के पितामह को पिण्डदान करके यशस्वी पुत्र प्राप्त कर सकती है।[२] पितरों की सत्ता एवं महत्ता का इससे पुष्ट प्रमाण और क्या होगा? गयादत्त, गयाप्रसाद और बदरीनाथ जैसे नामों की परम्परा का आधार पितर कृपा ही है। किं बहुना, स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने कहा है—मेरे पिता गया गये हुए थे। वहाँ श्रीरामचन्द्र जी ने स्वप्न में प्रकट होकर उनसे कहा कि मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा।[३] स्वामीजी का पूर्वनाम गदाधर सर्वविदित है।

भगवान् विष्णु गया क्षेत्र में गदाधर नाम से पूजित, प्रतिष्ठित हैं। पितरों के निमित्त किए गए श्राद्ध, तर्पण एवं दान आदि प्रत्येक कृत्य की समाप्ति पर हम उसे भगवान् को समर्पित करते हुए कहते हैं—इस यथाशक्ति किए कर्म से मेरे समस्त पितर स्वरूप भगवान् जनार्दन वासुदेव प्रसन्न हों। यह कृत्य मेरा नहीं है।[४] इस वाक्य से स्पष्ट हो जाता है कि पितर-पूजन भगवान् विष्णु को समर्पित होकर हमें भगवान् का कृपाभाजन

---

१. न तत्र वीरा जायन्ते निरोगो न शतायुषः। न च श्रेयोऽधि गच्छन्ति यत्र श्राद्धं विवर्जितम्॥

२. पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजन तत्परा। मध्यमं तु ततः पिण्डं दद्यात्सम्यक् सुतार्थिनी॥ आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम्। धनवन्तं प्रजावन्तं सात्त्विकं धार्मिकं तथा॥ लोक में उक्त विधि का आचरण इस प्रकार हो रहा है। गृहपति स्वयं पिण्डदान करके पितामह (मध्यम) के पिण्ड का कुछ अंश प्रसाद स्वरूप पुत्र की कामनावाली स्त्री को खिला देते हैं। उक्त विधि से लाभान्वित हुए कुल, प्रस्तुत पद्धति के रचयिता के परिचितों में हैं।

३. पण्डित द्वारकानाथ तिवारी, श्री रामकृष्ण लीलामृत, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ३४।

४. अनेन यथाशक्ति देवर्षि मनुष्य पितृतर्पणाख्येन कर्मणा भगवान् मम समस्तपितृस्वरूपी जनार्दनवासुदेवः प्रीयतां, न मम।

बना देता है। इस प्रकार "पितरों को देवता[1] समझो" ऋषिवाक्य चरितार्थ होता रहता है।

महर्षियों ने पितरलोक एवं पितृयान की देवयान के समानान्तर व्याख्या की है। पितृयान के विषय में उनका कथन है—"मरण के बाद सुकर्मी जिस मार्ग से अपने कर्मों का फल भोगने के लिए लोकान्तर में जाते हैं, उसे यहाँ पितृयान कहा गया है। उस पर इस भाँति जाते हैं। मरने के बाद वे धूएँ से संगत होते हैं। धूएँ से रात, रात से अपर (कृष्ण) पक्ष, अपर पक्ष से छः दक्षिणायन मासों को प्राप्त होते हैं.....। मासों से पितृलोक को, पितृलोक से आकाश को, आकाश से चन्द्रमा को प्राप्त होते हैं। वहाँ (चन्द्रलोक में) सम्पात् (अवधि) के अनुसार निवास कर पुनः उसी रास्ते से लौटते हैं—जैसे कि (चन्द्रमा से) इस आकाश को आकाश से वायु को, वायु हो धूम होता है, धूम हो बादल होता है। बादल हो मेघ होता है, मेघ हो बरसता है। (तब) वे (लौटे जीव) जौ, धान, औषधि, वनस्पति, तिल, उड़द हो पैदा होते हैं.......। जो, जो अन्न खाता है, जो वीर्य सेचन करता है, वह फिर से ही होता है।[2]" छान्दोग्य वर्णित पितृयान के उक्त विवरण द्वारा हमें पितृलोक, पितरों के प्रिय दक्षिणायन, कृष्ण पक्ष, एवं पुनर्जन्म का सुसङ्गत परिचय प्राप्त होता है।

पितृयान? अर्थात् पितरों के आवागमन, चन्द्रलोक से भूलोक का मार्ग। इन के साथ पुनर्जन्म की सम्भावना बनी हुई है। आरम्भ में पितरों के देवयान से आने की प्रार्थना की गई है। इस प्रकार दो मार्गों के प्रयोक्ता पितरों का भेद स्पष्ट होता है—विश्वेदेवाः श्रृणुतेमꣳहवं में ये अन्तरिक्षे य उप द्यविष्ठ ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्वर्हिषि मादयध्वम्॥ (यजुर्वेद ३३/५३) अर्थात्, "हे विश्वेदेवगण! आप लोगों में जो अन्तरिक्ष में हों, जो द्युलोक (स्वर्ग) के समीप हों तथा अग्नि के समान जिह्वा (अग्निजिह्वा) वाले एवं यजन करने योग्य हों वे सब हमारे इस आवाहन को सुनें और इन कुशों के आसन पर बैठ कर तृप्त हों।"

यहाँ पितरों को विश्वेदेव नाम से सम्बोधित करते हुए उन की स्थिति अन्तरिक्ष, स्वर्ग के समीप बताते हुए आवाहित किया गया है। इन दो के

१. पितृदेवो भव।

२. विस्तार हेतु द्रष्टव्य, छान्दोग्योपनिषद्, ५/१०/१-६

साथ अग्निजिह्व तथा पूजनीय पितरों के दो और वर्गों को सम्मिलित देखा जाता है। 'पूजनीय पितर' समग्रता के बोध हेतु प्रयुक्त हुआ है। अग्निजिह्व मोक्ष के सन्निकट। स्वर्ग के समीप? पितृलोक से प्रस्थित हुआ ऊर्ध्वगति की ओर उन्मुख। अन्तरिक्ष स्थित? अर्थात् पितृलोक अथवा चन्द्रलोक के ऊर्ध्वभाग[१] के निवासी, पितृयान पथ के पथिक। पुनर्जन्म की सम्भावना संयुत ये, भूलोक स्थित व्यक्ति के पिता, पितामह एवं प्रपितामह हैं।

देवयान के प्रयोक्ता पितर, प्रपितामह की ऊपरी पीढ़ी के पितर हैं। इनके लिए पिण्डदान का विधान नहीं है। ये हम से मात्र अन्न-जल (तर्पण) दान की आकांक्षा रखते हैं। कुशासन पर आसीन होने की प्रार्थना इन से ही की गई है। वर्हिषद? अर्थात् कुश के आसन पर विराजित। वर्हिषद पितर, सोमपान के अधिकारी, सोम्या पितर, अब विश्वेदेवगण के सदस्य हो चुके हैं अतः अब इन्हें पिता, पितामहादि की भाँति नामोच्चार पूर्वक आवाहित न करके इनके विशेषणों द्वारा सम्बोधित, आवाहित करते हैं।

पितरों की विश्वेदेवों के साथ स्थिति, उन की प्रतिष्ठा तथा उन्नत श्रेणी की परिचायिका है। मत्स्य पुराण के अनुसार क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, कालकाम, मुनि, कुरज, मनुज, बीज और रोचमान, विश्वा द्वारा उत्पन्न ये दस विश्वेदेव[२], धर्म के पुत्र हैं। तर्पण पद्धति में इन दस नामों का उल्लेख नहीं है। देव और ऋषि तर्पण के पश्चात् कव्यवाड् अग्नि आदि दिव्य पितरों के साथ अग्निष्वात्त, सोमपा एवं बर्हिषद नाम का उच्चारण करते हुए तीन-तीन अञ्जलि जल देने के विधान द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि देवयान के प्रयोक्ता दिव्य पितर हमारे प्रपितामह के पिता, पितामह और प्रपितामह हैं।

कर्ता द्वारा पिता से प्रपितामह तक की तीन पीढ़ियों को 'मेरे पिता', 'मेरे पितामह' आदि कहते हुए तर्पण करने से यह स्पष्ट होता है कि कर्ता इन का वंशज है। नामोच्चार से मात्र एक-एक की तृप्ति होती है। किन्तु 'सोम्या' आदि विशेषणों से कर्ता के प्रपितामह के प्रपितामह तक की तीन पीढ़ियों के समस्त पितर तृप्त होते हैं। यद्यपि कर्ता उनका वंशज नहीं, केवल उस कुल का सदस्य है। समग्रता के कारण ही हम इनके लिए

---

१. विधूर्ध्व भागे पितरो वसन्तः।

२. विश्वायाश्च तथा पुत्रा विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः ॥ १२ ॥ क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामो मुनिस्तथा। कुरजो मनुजो बीजो रोचमानश्च ते दश ॥ १३ ॥ मत्स्यपुराण, अध्याय २०३।

बहुवचनात्मक 'तृप्यन्ताम्' का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार श्राद्ध अथवा तर्पण द्वारा विश्वेदेव संज्ञा से अभिहित, आवाहित 'दिव्य पितरों' सहित हमारे छः पीढ़ी के पूर्वज तृप्त होते हैं। पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड में पितरों की अन्य श्रेणियों का उल्लेख है किन्तु वे तर्पणीय नहीं हैं। यहाँ यह कहा जाना प्रासङ्गिक है, कि सोम्यादि के अतिरिक्त सभी तर्पणीय जनों का श्राद्ध अथवा तर्पण करते समय सुस्पष्ट नाम लेना आवश्यक है। नाम लेने से पितर प्रसन्न और तृप्त होते हैं। वे नामोच्चार की इच्छा रखते हैं।[१]

पितरप्रिय दक्षिणायन के श्रावण से पौष तक के छः महीनों में आश्विन तीसरा है। लगभग मध्य दक्षिणायन। सूर्य इन दिनों कन्या राशि में स्थित रहते हैं। चन्द्रलोक से सम्बद्ध पितरों के समस्त कार्य चन्द्रमास की तिथियों एवं पक्षों पर आधारित होते हैं। अतः चन्द्रमास के आश्विन का कृष्णपक्ष, पितृपक्ष नाम से प्रसिद्ध है। पितृपक्ष ? पितरों का प्रिय पक्ष अथवा केवल पितरों का पक्ष। इस पक्ष का अन्य प्रसिद्ध नाम 'महालय' है। पितृपक्ष मात्र आश्विन कृष्णपक्ष तक सीमित है, किन्तु महालय का आरम्भ भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा को और समाप्ति पितृपक्ष के साथ आश्विन कृष्णा अमावस्या को होती है।

यद्यपि तर्पण नित्यकर्म है तथापि पितृपक्ष में तर्पण अनिवार्य है। पितृपक्ष में नित्य तर्पण, तिथियों के अनुसार पितरों के निमित पिण्ड और अन्नदान न कर के हम पितरों को कुपित कर देते हैं। इस विषय में हमारे शास्त्रों का कथन है—"जो मनुष्य आकाश (अन्तरिक्ष) में पितर नहीं है यह मानकर श्राद्ध नहीं करता, पितर उसका रक्त पीते हैं।"[२] महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है—यदि कोई पुत्र नास्तिक भाव के कारण तर्पण नहीं करता है तो अतृप्त प्यासे पितर उस की देह का रक्त पी लेते हैं।[३]

पितृपूजन अथवा श्राद्ध एवं तर्पण के अनेक लाभ बताए गए हैं। पिता की महत्ता-पूजनीयता घोषित करते हुए पितामह भीष्म कह रहे हैं—"पिता धर्म है, पिता स्वर्ग और परमतप है। पिता के प्रसन्न होने पर सभी देवता

---

१. पितरो वाक्यमिच्छन्ति।

२. खे न सन्ति पितरश्चेति, कृत्वा मनसि यो नरः।
श्राद्धं न कुरुते तत्र, तस्य रक्तं पिवन्ति ते ॥ (आदित्य पुराण)

३. नास्तिक्य भावाद्यश्चापि न तर्पयति वै सुतः। पिवन्ति देहरुधिरं पितरो वै जलार्थिनः॥ (महर्षि याज्ञवल्क्य)।

प्रसन्न होते हैं।[१] "पूजन से सन्तुष्ट पितर, आयु, पुत्र, यश, स्वर्ग धन-धान्य, स्वास्थ्य शोभा एवं पराक्रम आदि सब कुछ देते हैं।"[२] उक्त वाक्य के सम्बन्ध में प्रस्तुत निबन्ध के रचयिता का कथन है—"यह स्वयं सिद्ध है। इसमें तनिक भी सन्देह करने का स्थान नहीं है।"

बदरीनाथ धाम में ब्रह्मकपाली नामक स्थान पर श्राद्ध कर चुकने के बाद श्राद्ध करने का विधान नहीं है। अर्थात् पितर अब पिण्डदान की कामना नहीं रखते किन्तु इस के पश्चात् भी वे तर्पण की इच्छा रखते हैं। अत: तर्पण की अनिवार्यता बताते हुए इसे नित्य-कर्म की मान्यता दी गई है।[३]

तर्पण सहित पितर सम्बन्धी समस्त कृत्यों का प्रथम दायित्व पुत्रों का है। सभी भाई समानाधिकारी हैं तथापि बड़े भाई को वरीयता प्राप्त है। अभाव में पत्नी, भाई, आदि निकटतर व्यक्ति अधिकारी होते हैं। इन के अतिरिक्त तर्पण पद्धति का एक उज्ज्वल पक्ष हमें सदैव स्मरण रखना चाहिए। देव पूजा अथवा पितरों का श्राद्ध तर्पण, सभी का मूल आधार है श्रद्धा। अत: श्रद्धेय और श्रद्धालु सम्बन्ध के आधार पर तर्पण का अधिकार पर्याप्त विस्तृत हो जाता है।

तर्पण की दूसरी अधिकारिणी पत्नी है। पत्नी कुश तथा तिल जल से अपने सम्बन्ध तथा गोत्र का उच्चारण करके पति का तर्पण करती है। इसके पश्चात् पति के पिता तथा उसके पिता का नाम लेते हुए तर्पण करती है।[४] सव्य, अपसव्य आँचल के छोर को बायें-दायें कन्धे पर कर के किया जाता है। तर्पण के तीसरे अधिकारियों में भाई-भतीजे आदि कुल के अन्य लोग तथा चौथे अधिकारियों में शिष्य एवं सम्बन्धी आते हैं।

---

१. पिता धर्म: पिता स्वर्ग: पिता हिं परमंतप:, पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व देवता॥
महा० भा०।

२. आयु: पुत्रान् यश: स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्। पशून् सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात्॥ महा० अनुशासन पर्व॥

३. श्राद्धं कृत्वा विशालायां पितृनुद्दिश्य यत्नत:। पुन: श्राद्धो न कर्तव्य: केवलं तर्पणं चरेत्॥ त्रिस्थली सेतु॥

४. तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तु: कुश तिलोदकै:। तत्पितुस्तत्पितुश्चापि नामगोत्रादि पूर्वकम्॥ शिवपुराण, काशी खण्ड।

लोक परम्परानुसार सधवा स्त्रियाँ भी महालय के काल में मातृनवमी तक सास, दादी सास एवं पड़दादी सास के तर्पण के पश्चात् अपने श्वसुर आदि का तर्पण करती हैं। यदि श्वसुर हैं तो उनके पिता-पितामहादि का तर्पण करती हैं। तदनन्तर अपने पिताकुल के तर्पणीयों का तर्पण करती हैं। स्त्रियों द्वारा तर्पण सास के दिवङ्गत होने के पश्चात् प्रारम्भ होता है। ये तर्पण में वैदिक मन्त्रों का प्रयोग नहीं करती हैं। तर्पणीय गोत्र—पिता का गोत्र, ननिहाल का गोत्र, ससुराल का गोत्र, बहिन की ससुराल का, बेटी की ससुराल का तथा बुआ और मौसी की ससुराल, इन सात गोत्रों के लोग तर्पणीय श्रेणी के हैं।[१]

तर्पण का क्रम—पिता, पितामह एवं प्रपितामह तत्पश्चात् जननी, दादी और पड़दादी इन के बाद सौतेली माँ तब नाना, पड़नानाऔर बूढ़े पड़नाना का तर्पण करने का विधान है। पिता, पितामह तथा प्रपितामह इन का तर्पण कदापि सपत्नीक पढ़कर नहीं किया जाता है। शेष सब का तर्पण सपत्नीक और सपुत्री तथा सपुत्र आदि पढ़ते हुए कर सकते हैं। बूढ़े पड़नाना के पश्चात् अपनी पत्नी, सपत्नीक सपुत्र अपने पुत्र का, पति, पुत्र सहित वा केवल, परिस्थिति के अनुसार पुत्री, इसी प्रकार पितृव्य (चाचा) मामा, भाई के बाद सौतेला भाई, पति पुत्रादि सहित बुआ और मौसी, पति सहित बहिन तथा सौतेली बहिन, सपत्नीक-सपुत्र श्वसुर, सद्‌गुरु, शिष्य तथा विश्वस्त, श्रद्धेय, विशिष्ट, अन्तरङ्ग (आप्त) पुरुष का तर्पणक्रम पितृपक्ष, तीर्थ श्राद्ध, एवं नित्य तर्पण हेतु निश्चित किया गया है।[२] महर्षि अगस्त्य, एवं पितामह भीष्म वर्मा ये दोनों ऋषि तथा मनुष्यों के आप्त प्रतिनिधि हैं अतः तर्पण के आदि और अन्त में इनका तर्पण विहित है।

पितामह भीष्म द्वापर युग के आप्त पुरुष हैं। अपने अप्रतिम वैशिष्ट्य के कारण ये सब के तर्पणीय स्वीकृत हुए हैं। सामान्य नियम के अनुसार ब्राह्मणों को ब्राह्मणेतर का तर्पण नहीं करना चाहिए किन्तु केवल पितामह

---

१. पितुर्मातुश्च भार्याया भगिन्या दुहितुस्तथा। पितृष्वसामातृष्वस्रोर्गोत्राणां सप्तकं स्मृतम्।

२. ताताम्बत्रितयं सपत्नजननी मातामहादित्रयं, सस्त्रि स्त्रीतनयादि तातजननीस्वभ्रातरः सस्त्रियः।
ताताम्बात्मभगिन्यपत्यधवयुग् जायापिता सद्‌गुरुः, शिष्याप्ताः पितरो महालयविधौ तीर्थे तथा तर्पणे॥ आह्निक सूत्रावलिः।

भीष्म के साथ यह नियम शिथिल हो जाता है। आप्तजनों के तर्पण की परम्परा मात्र उल्लिखित दो महापुरुषों तक सीमित नहीं है। वर्तमान समय में अनेक आस्थावान् गृहस्थों द्वारा समकालीन विशिष्ट पुरुष अथवा साधुजन के तर्पण की परम्परा का पालन किया जा रहा है।

आश्रम क्रमानुसार विद्यार्थी को पिता के जीवन काल में सन्ध्योपासन के अनन्तर चतुर्दश यमों तक तर्पण करने का विधान है। उसे पिता के रहते विवाह के पश्चात् भी पितरों का तर्पण नहीं करना चाहिए। पिता के न रह जाने पर पितरों सहित सात गोत्रों के बान्धव, सम्बन्धी, तथा आप्त पुरुषों सहित समस्त तर्पणीय जनों का तर्पण किया जाता है। गार्हस्थ्य से अवकाश के बाद वानप्रस्थ स्थिति में भी सम्पूर्ण, साङ्गोपाङ्ग तर्पण करने का नियम है। क्यों ? कि उसने अभी अग्नि[१] का परित्याग नहीं किया है। सन्न्यास आश्रमी निरग्नि होता है अत: उसका तर्पण का दायित्व समाप्त हो जाता है। किन्तु सन्न्यास अनिवार्य स्थिति नहीं है, अत: तर्पण यावज्जीवन के कर्तव्यों में एक है।

इस प्रकार त्रिदेव, ऋषि, देव, पितर, सागर, पर्वत, वनस्पति एवं यमादि सहित चराचर को तृप्त करती हमारी तर्पण सरिता सतत प्रवाहित है।

●

१. कर्मकाण्ड के अनुसार १. गार्हपत्य २. आवहनीय ३. दक्षिणाग्नि।

उपकरण, मुद्राएँ एवं विविध

१. धोती। रेशमी अथवा सूती सफ़ेद। सफ़ेद अँगोछा। रंगीन वस्त्र एवं फूल आदि पितर कार्य में वर्जित हैं। स्नान के बाद भीगी धोती तर्पण समाप्त होने के बाद ही निचोड़ी जाय।

२. आसन। कुशों का, मृगचर्म और कम्बल। ये तीन, दो या केवल एक।

३. कुशों के पत्ते। इनसे बनी पवित्री, छिगुनी के पास की उँगली, दायीं अनामिका में धारण की जाती है। समूल कुशों से बने त्रिकुश और मोटक। त्रिकुश, तीन कुशों को एकत्र गूँथ कर और मोटक केवल दो कुशों के मूल को विपरीत दिशा में रखते हुए वट कर बनाते हैं। इन्हें बनाना सीख लें अथवा अपने पुरोहित द्वारा प्राप्त कर लें।

४. सोना, चाँदी, ताँबा अथवा काँसे के पात्रों का प्रयोग पितर कार्य में शास्त्रविहित है। लोहा, मिट्टी आदि के पात्रों का प्रयोग वर्जित है। क्षमतानुसार धातु चुन लें।

५. तर्पण हेतु आवश्यक पात्र हैं—लोटा, पञ्चपात्र, आचमनी, अरघा, और बड़ी थाली। चन्दन और अक्षत आदि के लिए चार कटोरी। चन्दन केवल सफेद होना चाहिए।

६. अक्षत, कोई अटूटा अन्न। धार्मिक कार्यों में प्रयोग हेतु कूटे, पिछोड़े तथा तीन बार जल से धोये चावल देवों के लिए प्रयोग में आते हैं। दिव्य मनुष्य, सनकादि के तर्पण के लिए यव के अक्षतों को दो बार धुलना चाहिए। पितरों के तर्पण में काले तिलों के अक्षत का प्रयोग किया जाता है। इन्हें दो बार धुला जाय। चावल, यव तथा काले तिलों का प्रयोग बहु प्रचलित है। किन्तु ''याज्ञवल्क्य के मत से तर्पण के अक्षत केवल तिल हैं। महर्षि के मत से देवतर्पण श्वेत, दिव्य मनुष्यों का सफेद और काला मिश्रित (शबल) तथा पितरों का तर्पण काले तिलों से किया जाना चाहिए। दोनों व्यवस्थाएँ समीचीन हैं। कर्ता कोई एक चुन ले। संशय का स्थान नहीं है। तर्पण में तिल प्रयोग न करने के अनेक दिन, योग तथा तिथियों का

निर्देश किया गया है किन्तु 'स्नान सूत्रभाष्य' के अनुसार कठ, काण्व, जाबाल एवं वाजसनेयि सम्प्रदाय के लोग सदैव तिलमिश्रित तर्पण करने के अधिकारी हैं। कात्यायन के अनुसार उल्लिखित चार के अतिरिक्त अन्य लोगों द्वारा भी ग्रहण, पितरश्राद्ध, देहान्तजनित अशौच में अमावस्या तथा सूर्य के एक राशि से दूसरी में सङ्क्रान्ति के दिन, निषेध होते भी सर्वत्र तिल सहित तर्पण किया जाना चाहिए। 'पृथ्वी चन्द्रोदय' के अनुसार, तीर्थों में, विशिष्ट तिथियों में, गङ्गातट पर, एवं पितृपक्ष में, निषिद्ध दिनों में भी तिलमिश्रित तर्पण किया जाना चाहिए। वायु पुराण का मत है, श्रद्धापूर्वक, तिल और कुश से युक्त दिया गया जल पितरों को अमृत के समान प्राप्त होता है तिल न रहने पर सोना अथवा चाँदी से संयुत इन के अभाव में कुश से युक्त जल द्वारा तर्पण किया जाना चाहिए।''[१]

उल्लिखित वचनों द्वारा तिलों की अपरिहार्यता व्यक्त होती है। तिलों के अभाव की पूर्ति हेतु ही सोना, चाँदी और ताँबे के मिश्रण की अँगूठी का निर्देश किया गया है। केवल सोने, चाँदी अथवा ताँबे की अँगूठी अथवा अर्घ्यपात्र के प्रयोग की परम्परा देखी जाती है। गैंडे की सींग के बने अर्घ्यपात्र द्वारा तर्पण पितरों को परम तृप्तिकारक कहा गया है किन्तु यह जन सामान्य के वश का नहीं है।

७. उपवीत, यज्ञोपवीत अथवा जनेऊ। सामान्य स्थिति में यह बायें कन्धे पर और दाहिने बाहु के नीचे रहता है। यह सव्य स्थिति है। सव्य ? बायाँ।

अपसव्य। इस स्थिति में जनेऊ दाहिने कन्धे पर और बायीं भुजा के नीचे रखते हैं। इसे 'प्राचीनावीत' भी कहते हैं।

कण्ठीकरण। जब किसी बाहु के नीचे न हो। केवल कण्ठ में माला की भाँति हो। इसे 'निवीत' कहा जाता है। ''निवीतं मनुष्याणां, प्रचीनावीतं पितृणामुपवीतं देवानाम्।'' अर्थात् निवीत 'माला' स्थिति में सनक आदि मनुष्यों का, अपसव्य स्थिति में पितरों का और सव्य स्थिति में देवों का तर्पण, श्राद्ध तथा पूजन आदि किया जाना चाहिए। पहने हुए जनेऊ को, चाहे वह किसी स्थिति में हो 'आवीत' कहते हैं। उपवीत

१. आह्निक सूत्रावलिः चतुर्थ भाग कृत्यानि, पृष्ठ २००

विहीन लोग तथा स्त्री समुदाय अँगोछा तथा आँचल को दाएँ-बाएँ करके सव्य, अपसव्य हो लेते हैं।

तीर्थ

तीर्थ ? पवित्र स्थान। पितरों, मनुष्य तथा देवों के तर्पण हेतु दायें हाथ के तीन स्थानों को तीन तीर्थों का नाम दिया गया है। हाथ में दो अन्य तीर्थ भी हैं जो प्राय: देवकार्य में अथवा आचमनी के अभाव में प्रयुक्त होते हैं।

अग्नितीर्थ--दाहिनी अथवा बायीं हथेली का मध्य।

ब्रह्मतीर्थ—दायें अँगूठे का मूल।

देवतीर्थ—चारों जुड़ी दायें हाथ की अँगुलियों का अग्रभाग।

कायतीर्थ—कनिष्ठिका का मूल।

पितृतीर्थ—तर्जनी तथा अँगूठे के मध्य।

●
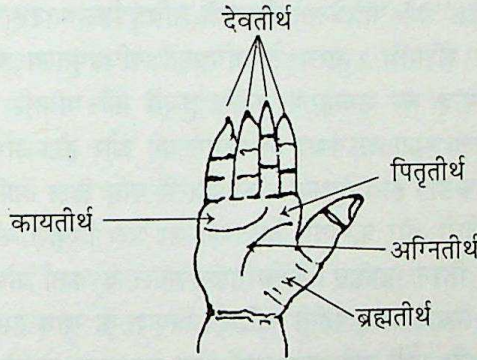
तर्पणम्

जो सज्जन तर्पण को नित्य सन्ध्योपासन के पश्चात् सम्पन्न करते हैं वे आसन शुद्धि तथा सङ्कल्प आदि प्रारम्भ में करते हैं। जो लोग केवल महालय की अवधि में तर्पण करते हैं वे भाद्रपद शुक्ल १५ को सङ्कल्प करें—ॐ अद्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्धे, श्री श्वेतवाराहकल्पे, श्री वैवस्वत मन्वन्तरे, जम्बूद्वीपे, भरतखण्डे, आर्यावर्त्तैकदेशे, कलियुगे, कलिप्रथमचरणे, ...पुण्यक्षेत्रे[1], अमुक .... संवत्सरे,......मासे......पक्षे......तिथौ......वासरे...... गोत्रोत्पन्नः......शर्मा......वर्मा......गुप्तोऽहं महालयविधौ महर्षेः अगस्त्यस्य प्रीत्यर्थं तर्पणं करिष्ये।'' वाक्य पूरा होने पर एक आचमनी जल सामने थाली में गिरा दें। ''ॐ पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वप्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम्।'' मन्त्र का उच्चारण करके कुशों की पवित्री धारण करें। त्रिकुश का अगला भाग अर्घ्यपात्र में सामने की ओर हो। अथवा हाथ में देवतीर्थ की ओर हो। हाथ अथवा अर्घ्यपात्र में यव, तिल आदि बाएँ हाथ से डालते रहें। देवों और ऋषिगण के तर्पण का जल त्रिकुश की शिखा का स्पर्श करते हुए गिरना चाहिए। इनके तर्पण काल में कर्ता को पूर्वाभिमुख तथा जनेऊ की स्थिति सव्य रहनी चाहिए। त्रिकुश के साथ हाथ में चावल लेकर पञ्चपात्र से बायें हाथ द्वारा दायें हाथ पर जल छोड़ते देवतीर्थ से गिराते हुए इन मन्त्रों को—काशपुष्प प्रतीकाश, वह्निमारुतसम्भव! मित्रावरुणयोर्योगः कुम्भयोने नमोऽस्तुते॥ आतापी भक्षितो येन वातापि च महाबलः। समुद्रश्शोषितो येन समेऽगस्त्यः प्रसीदतु॥ ॐअगस्त्याय नमः। कहते हुए महर्षि अगस्त्य को एक अञ्जलि जल दें। एक दिन के इस तर्पण में यदि काश (राड़ा) का पुष्प मिल सके तो सर्वश्रेष्ठ अन्यथा श्वेत फूल तुलसीदल आदि का प्रयोग करें।

आश्विन कृष्णा प्रतिपदा को पितृपक्ष प्रारम्भ होने पर प्रातःस्नान के पश्चात् स्वच्छ धोती-अँगोछा धारण करें। अनामिका में पवित्री धारण करके

---

१. अमुक (काशी, प्रयाग, विन्ध्य, वराह, कुरु, करवीर आदि) पुण्य क्षेत्रे

सङ्कल्प की अन्तिम शब्दावली का उच्चारण करें—......शर्मा......वर्मा ......गुप्त......दासोऽहं श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थं देवर्षिमनुष्यपितृतर्पणं करिष्ये।''

तर्पण-पद्धति के आचरणीय नियम इस भाँति हैं।

१. पितर तर्पण सूर्योदय के पश्चात् ही किया जाना चाहिए। उचित अवसर के अभाव में यथाकाल करें किन्तु करें अवश्य। प्रातः आठ बजे तक तर्पण का सर्वश्रेष्ठ समय है।

२. पितृपक्ष में श्राद्ध के दिन श्राद्ध समाप्ति के पश्चात् तर्पण करने का नियम है।

३. कर्ता के स्नान की भीगी धोती तर्पण समाप्त होने के पश्चात् निचोड़ी जाय।

४. तर्पण की अञ्जलि, देव और ऋषिगण की एक-एक सनक से पञ्चशिख तक दो-दो, यमादि तथा समस्त पितरों की तीन-तीन, माता से प्रपितामही तक तीन-तीन, शेष स्त्रियों की एक-एक होनी चाहिए।[1]

५. सन्ध्योपासन से बचा जल नितान्त अशुद्ध होता है। इसे फेंक दें। तर्पण हेतु भरे जल के लोटे में, यदि है तो गङ्गाजल की कुछ बूँदें गिरा दें। लोटे में सफेद चन्दन, धुले अक्षत, सफेद फूल तथा तुलसीदल डाल कर दायें के ऊपर बायें हाथ को रखते हुए लोटे के मुँह को ढककर, सागर और गङ्गा आदि पवित्र नदियों का आवाहन करें—

सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः।
आयन्तु देव! शान्त्यर्थं, दुरितक्षयकारकाः॥
गङ्गे च यमुने चैव, गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धो कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु॥

हाथ हटा लें। लोटे से गिलास वा पञ्चपात्र में जल भर लें। गिलास का जल समाप्त होने पर लोटे से लेते रहें। अञ्जलि शब्द दोनों हाथों के जुड़ने पर चरितार्थ होता है किन्तु ऐसा तर्पण केवल नदियों और सरोवरों में सम्भव होता है। सामान्य स्थिति में केवल दायें हाथ के तीर्थों का ध्यान रखते हुए हाथ अथवा करस्थ अर्घ्यपात्र से तर्पण करते हैं।

---

१. व्यास—एकैकमञ्जलिं देवा, द्वौ द्वौ तु सनकादयः।
अर्हन्ति पितरस्त्रीन्, स्त्रियः एकैकमञ्जलिम्॥
सांख्यायनः—मातृमुख्यास्तु यास्तिस्रस्तासां त्रींस्त्रीञ्जलाञ्जलीन्।
सपत्न्याचार्य पत्नीनां, द्वौ द्वौ दद्याज्जलाञ्जली॥

देव और ऋषि तर्पण के पूर्व—स्वयं पूर्वाभिमुख रहें। कन्धे पर श्वेत अँगोछा हो। जनेऊ सव्य स्थिति में हो। अरघा दायें हाथ पर इस भाँति रखें कि अरघे की नोक मध्यमा उँगली के ऊपर हो। त्रिकुश का अग्रभाग अरघे में नोक की ओर हो। अरघे में सफेद चन्दन, अक्षत, फूल तथा तुलसीदल रखकर लोटे अथवा पञ्चपात्र से जल भर लें। अरघे में प्रादेश[१] मात्र लम्बे तीन कुश रखें जिनका अग्रभाग पूर्व की ओर रहे। इन कुशों को पात्र से तुलसीपत्र सहित निकालकर सम्पुटाकार दायें हाथ में लेकर बायें हाथ से ढँक लें और निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ते हुए विश्वेदेव और देवों का आवाहन करें—(प्रादेश मात्र लम्बे कुशों की प्रक्रिया उनके लिए है जो नित्य नये त्रिकुश का प्रयोग करते हैं)।

आवाहन—ॐ विश्वान् देवान् भवत्सु आवाहयिष्ये।

भावार्थ—हे विश्वेदेव गण! आप लोगों का आवाहन करता हूँ।

ॐ विश्वेदेवासऽआगत श्रृणुतामऽइम ँ हवम्। एदं बर्हिर्निषीदत्॥ यजु० २/३४/७।

भावार्थ—हे विश्वेदेवगण! आप लोग यहाँ पदार्पण करें। हमारे इस आवाहन को सुनें और इस कुश के आसन पर विराजमान हों। कहकर एक कुश का पत्ता सामने थाली में रख दें।

विश्वेदेवाः श्रृणुतेमँहवं मे ये अन्तरिक्षे य उपद्यविष्ठ। ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम्। यजु० ३/५३/३३।

भावार्थ—हे विश्वेदेवगण! आप लोगों में से जो लोग अन्तरिक्ष में हों, जो स्वर्ग के समीप हों तथा अग्नि के समान जिह्वा वाले एवं पूजन के योग्य हों, वे सब हमारे इस आवाहन को सुनें और इस कुशासन पर बैठकर तृप्त हों।

आगच्छन्तु महाभागा, विश्वेदेवा महाबलाः।
ये तर्पणेऽत्र विहिताः सावधाना भवन्तु ते॥

भावार्थ—जिनका इस तर्पण में वेदविहित अधिकार है, वे महान् बलशाली, महाभाग विश्वेदेवगण यहाँ आवें और सावधान हो जाँय।

---

१. प्रादेश = अँगूठा से फैली हुई तर्जनी तक की लम्बाई।

अब प्रत्येक नाम के साथ अरघे से एक-एक बार थोड़ा-थोड़ा जल सामने रखी कुशयुक्त थाली में गिराते रहें और इन श्लोकों का धीमी गति से पाठ करते जाँय—''ॐ [१]ब्रह्मा[२]विष्णुस्तथा [३]रुद्रः चतुर्थश्च [४]प्रजापतिः।'' [५]छन्दांसि [६]देवाः [७]वेदाश्च [८]पुराणाचार्यसंयुताः।। [९]गन्धर्वा[१०]श्चेतराचार्याः [११]ऋषयः [१२]संवत्सरस्तथा। सावयवश्च [१३]देव्यश्च, [१४]तृप्यन्त्वप्सरस्तथा॥ [१५]देवानुगाश्च [१६]नागाश्च [१७]सागराखिल [१८]पर्वताः। [१९]सरितश्च [२०]मनुष्याश्च [२१]यक्षाः [२२]रक्षांसि ते पुनः॥ [२३]पिशाचाश्च [२४]सुपर्णाश्च [२५]भूतानि [२६]पशवस्तथा। [२७]वनस्पत्यौ[२८]षधिस्तत्तु [२९]भूतग्रामाश्चतुर्विधाः॥ सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दतेनाम्बुना सदा॥

देवादि तर्पण के पश्चात् पूर्वस्थिति अनुसार रहते हुए दश ऋषियों के आवाहन हेतु ''ॐ मरीच्यादि दश ऋषयः आगच्छन्तु गृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन्'' वाक्य का उच्चारण करें। पूर्ववत् अरघा अथवा हाथ में अक्षत, फूल आदि लेकर एक ऋषि को एक अञ्जलि जल, देवतीर्थ से गिराते हुए निम्नलिखित श्लोकों का पाठ करें—ॐ [१]मरीचि[२]मत्र्य[३]ङ्गिरसौ, [४]पुलस्त्यं [५]पुलहं [६]क्रतुम्। [७]प्रचेतसं [८]वशिष्ठञ्च, [९]भृगुं [१०]नारदमेव च॥ तान् सर्वान्तर्पयाम्यद्य, स्वदत्तेनाम्बुना सदा॥

दिव्य मनुष्य तर्पण

ऋषितर्पण के बाद जनेऊ को माला की भाँति कण्ठ में धारणकर (निवीती) पूर्वोक्त त्रिकुश को दायें हाथ की कनिष्ठिका के मूल (प्राजापत्य तीर्थ) में उत्तराग्र रखकर स्वयं उत्तराभिमुख हो, निम्नाङ्कित प्रत्येक नाम के लिए दो-दो अञ्जलि, यवसहित जल ऋषि (काय) तीर्थ से अर्पण करें—''[१]सनकः [२]सनन्दनश्चैव तृतीयश्च [३]सनातनः। [४]कपिल[५]श्चासुरिश्चैव [६]वोढुः [७]पञ्चशिखस्तथा॥'' सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दतेनाम्बुना सदा॥

दिव्य पितृतर्पण

दिव्य पितरों तथा मानवपितरतर्पण हेतु अपसव्य होकर त्रिकुश के स्थान पर मोटक ग्रहण करें। मोटक के मुड़े भाग में जड़ एवं शिखा एकत्र होते हैं। इसे दायें हाथ के अँगूठे तथा तर्जनी के मध्य रखें। अथवा अरघे की नोक की ओर मूल को रखते हुए अरघे की नोक पितृतीर्थ की ओर करके हाथ में लें। अरघे में समाप्त होने पर काले तिल डालते रहें। अँगोछे

को दायें कन्धे पर रखें। जिन्हें अपने गोत्र-प्रवरादि का ज्ञान न रह गया हो वे अपने तथा-अज्ञातगोत्र तर्पणीय सभी जनों के लिए 'कश्यप गोत्र' का प्रयोग कर सकते हैं। अज्ञातनाम व्यक्ति के तर्पण हेतु अपने सम्बन्ध के अनुसार अमुक.....परनाना अथवा अमुक गुरुजी आदि कहते हुए तर्पण करें। प्रत्येक तर्पणीय पितर की तृप्ति हेतु उन का नामोच्चारण करते हुए ३-३ बार सन्मुखस्थ थाली में जल गिरायें। विशेष रूप से ध्यान दें—पितरो वाक्यमिच्छन्ति, अर्थात् पितर अपने वंशज की वाणी सुनने की इच्छा रखते हैं। अत: पिता, पितामहादि सभी पितर तथा आप्त पुरुषादि समस्त तर्पणीय जनों का, स्वयं के सुनने योग्य ध्वनि में सुस्पष्ट नाम लें। सङ्कोचवश केवल मन में नाम लेना पितरों को अप्रीतिकर होगा। अपसव्य स्थिति का समस्त तर्पण दक्षिणाभिमुख होकर करें तथा बायाँ घुटना भूमि को स्पर्श करता रहे।

दिव्य पितृ तर्पण

आवाहन—ॐ कव्यवाडनलादयो दिव्यपितर: आगच्छन्तु गृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन् के उच्चारण द्वारा आवाहन कर के निम्नलिखित वाक्यों द्वारा तर्पण करें—ॐ कव्यावाडनलस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं) तस्मै स्वधा नम:॥ तस्मै स्वधा नम:॥ तस्मै स्वधा नम:॥ ३॥ ॐ सोमस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं) तस्मै स्वधा नम:॥ तस्मै०॥ ३॥ ॐ यमस्तृप्यताम इदं सतिल जलं (गङ्गाजलं) तस्मै स्वधा नम:॥ तस्मै० ॥ ३॥ ॐ अर्यमा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं) तस्मै स्वधानम:॥ तस्मै०॥ ३॥ ॐ अग्निष्वात्ता: पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं) तेभ्य: स्वधा नम:॥ तेभ्य:०॥ ३॥ ॐ सोमपा: पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं) तेभ्य: स्वधा नम:॥ तेभ्य:॥ ३॥ ॐ बर्हिषद: पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं) तेभ्य: स्वधानम:॥ तेभ्य:०॥ ३॥

यम तर्पण

इसी प्रकार निम्नलिखित मन्त्र-वाक्यों को पढ़ते हुए चौदह यमों के लिए भी पितृतीर्थ से ही तिल सहित तीन-तीन अञ्जलि जल दें—ॐ यमाय नम:॥ ३॥ ॐ धर्मराजायनम:॥ ३॥ ॐ मृत्यवे नम:॥ ३॥ ॐ अन्तकायनम:॥ ३॥ ॐ वैवस्वताय नम:॥ ३॥ ॐ कालाय नम:॥ ३॥ ॐ सर्वभूतक्षयाय नम:॥ ३॥ ॐ औदुम्बराय नम:॥ ३॥ ॐ दध्नाय

नमः ॥ ३ ॥ ॐ नीलाय नमः ॥ ३ ॥ ॐ परमेष्ठिने नमः ॥ ३ ॥ ॐ वृकोदरायनम ॥ ३ ॥ ॐ चित्राय नमः ॥ ३ ॥ ॐ चित्रगुप्ताय नमः ॥ ३ ॥

मनुष्य पितृ-तर्पण

निम्नाङ्कित मन्त्रों से पितरों का आवाहन करें—

ॐ उशन्तस्त्वा निधी मह्युशन्तः समिधीमहि।
उशन्नुशत आवह पितृन्हविषे अत्तवे॥

यजु० १९/७०

भावार्थ—हे अग्ने! तुम्हारे यजन की कामना करते हुए हम तुम्हें स्थापित करते हैं। यजन की ही इच्छा रखते हुए तुम्हें प्रज्वलित करते हैं। हविष्य की इच्छा रखते हुए तुम भी तृप्ति की कामना वाले हमारे पितरों को हविष्य भोजन करने के लिए बुलाओ।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥

यजु० १९/५८

भावार्थ—हमारे सोमपान करने योग्य अग्निष्वात्त पितृगण देवयान मार्गों से यहाँ आवें और इस यज्ञ में स्वधा से तृप्त होकर हमें मानसिक उपदेश दें तथा वे हमारी रक्षा करें।

आवाहन के अनन्तर अपने पितृगण को (तीन पीढ़ी तक के) क्रमशः नामोच्चार पूर्वक निम्नाङ्कित वाक्य योजनानुसार ३/३ अञ्जलि जल पूर्वस्थिति अनुसार दें। द्वितीय एवं तृतीय अञ्जलि के समय केवल 'तस्मै स्वधा नमः' कहें। तर्पण से पूर्व 'समस्तपितृनावाहयिष्ये' कहकर 'ॐ आगच्छन्तु मे पितर इमं गृह्णन्त्वपोञ्जलिम्' कहते हुए पितृतीर्थ से केवल एक अञ्जलि जल दें। अब बायें घुटने से भूमि स्पर्श करते हुए, मोटक के मूलाग्र को अँगूठे की ओर रखते हुए "ॐ अद्य......गोत्रः......प्रवरः अस्मत् पिता नाम शर्मा (वर्मा, गुप्तः) वसुस्वरूपस्तृप्यतामिदं तिलोदकं (सतिल- गङ्गाजलं) तस्मै स्वधानमः। तस्मै स्वधा नमः ॥ तस्मै स्वधानमः" कहते हुए पिता के निमित्त तीन अञ्जलि जल अर्पित करें। इसी भाँति "ॐ अद्य......गोत्रः......प्रवरः अस्मत्पितामहः नाम..शर्मा (वर्मा, गुप्तः) रुद्र स्वरूपस्तृप्यतामिदं तिलोदकं (सतिलगङ्गाजलं) तस्मै स्वधा नमः। तस्मै स्वधा नमः ॥" तस्मै स्वधा नमः "ॐ अद्य......गोत्रः......प्रवरः अस्मत्प्रपितामहः नाम..शर्मा (वर्मा, गुप्तः) आदित्यस्वरूपस्तृप्यतामिदं तिलोदकं (सतिलगङ्गाजलं) तस्मै

स्वधा नमः। तस्मै स्वधा नमः॥ तस्मै स्वधा नमः॥" "ॐ अद्य......गोत्रा......प्रवरा अस्मन्माता...नाम...देवी दा[1] गायत्री स्वरूपा तृप्यतामिदं तिलोदकं (सतिलगङ्गाजलं) तस्यै स्वधा नमः। तस्यै०॥ तस्यै०॥" "ॐ अद्य......गोत्रा......प्रवरा-अस्मत्पितामही...नाम...देवी दा सावित्री स्वरूपा तृप्यतामिदं तिलोदकं (सतिलगङ्गाजलं) तस्यै स्वधा नमः। तस्यै०॥ तस्यै०॥" "ॐ अद्य......गोत्रा......प्रवरा अस्मत्प्रपितामही......नाम......देवी दा सरस्वतीस्वरूपा तृप्यतामिदं तिलोदकं (सतिल-गङ्गाजलं) तस्यै स्वधा नमः। तस्यै०॥ तस्यै०॥ ॐ अद्य....गोत्रा....प्रवरा अस्मत्सापत्नमाता (सौतेली माँ)...नाम...देवी दा गायत्रीस्वरूपा तृप्यतामिदं तिलोदकं (सतिल गङ्गाजलं) तस्यै स्वधा नमः। तस्यै०॥ तस्यै०॥"

इस के बाद निम्नाङ्कित नौ मन्त्रों को पढ़ते हुए पितृतीर्थ से जल गिराते रहें—

ॐ उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु॥

यजु० १९/४९

"इस लोक में स्थित, परलोक में स्थित और मध्यलोक में स्थित सोमभागी पितृगण क्रम से ऊर्ध्वलोकों को प्राप्त हो जो वायुरूप को प्राप्त हो चुके हैं, वे शत्रुहीन सत्यवेत्ता पितर आवाहन करने पर (यहाँ उपस्थित होकर) हम लोगों की रक्षा करें।"

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषां वय ँ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम॥

यजु० १९/५०

अङ्गिरा के कुल में, अथर्व मुनि के वंश में तथा भृगुकुल में उत्पन्न, नवीन गतिवाले एवं सोमपान करने योग्य हमारे जो पितर इस समय पितृलोक को प्राप्त हैं, यज्ञ में पूजनीय उन पितरों की सुन्दर बुद्धि में तथा उनके कल्याणकारी मन में हम स्थित रहें। (अर्थात् उनकी मन-बुद्धि में हमारे कल्याण की भावना बनी रहे)।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥

यजु० १९/५८

---

१. गोभिल सूत्र—स्त्रियों के नामान्त में 'दा' लगायें।

हमारे सोमपान करने योग्य अग्निष्वात्त पितृगण देवताओं के गमन करने योग्य मार्गों से यहाँ आवें और इस यज्ञ में स्वधा से तृप्त होकर हमें मानसिक उपदेश दें तथा वे हमारी रक्षा करें।

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन्॥ यजु० २/३४/

हे जल! तुम स्वादिष्ट अन्न के सारभूत रस, रोग-मृत्यु को दूर करने वाले घी और सब प्रकार के कष्ट मिटाने वाले दूध का वहन करते हो तथा सब ओर प्रवाहित होते हो, अतः तुम पितरों के लिए हविस्वरूप हो, इसलिए मेरे पितरों को तृप्त करो।

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। अक्षन्पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम्॥

यजु० १९/३६/

स्वधा (अन्न) के प्रति गमन करने वाले पितरों को स्वधा[१] संज्ञक अन्न प्राप्त हो, उन पितरों को हमारा नमस्कार है। स्वधा के प्रति जाने वाले पितामहों को स्वधा प्राप्त हो, उन्हें हमारा नमस्कार है। स्वधा के प्रति गमन करने वाले प्रपितामहों को स्वधा प्राप्त हो, उन्हें हमारा नमस्कार है। पितर पूर्ण आहार कर चुके, पितर आनन्दित हुए, पितर तृप्त हुए। हे पितरो! अब आप लोग (आचमन आदि करके) शुद्ध हों।

ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म याँ २॥ उ च न प्रविद्म त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञ ँ सुकृतं जुषस्व॥

यजु० १९/६७/

जो पितर इस लोक में वर्तमान हैं और जो इस लोक में नहीं (किन्तु पितृलोक में विद्यमान) हैं तथा जिन पितरों को हम जानते और जिन को (स्मरण न होने के कारण) नहीं जानते हैं, वे सभी जितने पितर हैं, उन सबको हे जातवेदाअग्निदेव! तुम जानते हो। (पितरों के निमित्त दी जाने वाली) स्वधा के द्वारा तुम इस श्रेष्ठ यज्ञ का सेवन करो (इसे सफल बनाओ)।

---

१. 'स्वधा वै पितॄणामन्नम्' इतिश्रुतेः। स्वधा पितरों का अन्न है—श्रुति।

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ यजु० १३/२७/

यज्ञ की इच्छा करने वाले यजमान के लिए वायु मधु (पुष्परस-मकरन्द) की वर्षा करती है। बहने वाली नदियाँ मधुमधुर जल बहाती हैं। समस्त ओषधियाँ हमारे लिए मधुर-रस से युक्त हों।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ँ रजः। मधु द्यौ रस्तु नः पिता॥ यजु०१३/२८/

हमारे रात-दिन सभी मधुमय हों। माता के समान पोषण करने वाली पृथ्वी की धूलि हमारे लिए मधुमयी हो। पिता के समान पालन करने वाला द्युलोक हमारे लिए मधुमय-अमृतमय हो।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँऽअस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ यजु० १३/२९/ ॐ मधु। ॐ मधु। ॐ मधु। तृप्यध्वम्। तृप्यध्वम्। तृप्यध्वम्।

वनस्पति और सूर्य भी हमारे लिए मधुररस से युक्त हों। हमारी समस्त गाएँ माध्वी (मधु के समान दूध देने वाली) हों।

अब जलधारा देना रोक दें। अर्घ्यपात्र अथवा पञ्चपात्र नीचे रख दें। दोनों हाथों को जोड़कर निम्नाङ्कित मन्त्र का पाठ करते हुए नमस्कार करें—

ॐ नमो वः पितरो रसाय, नमो वः पितरः शोषाय, नमो वः पितरो जीवाय, नमो वः पितरः स्वधायै, नमो वः पितरो घोराय, नमो वः पितरो मन्यवे, नमो वः पितरः, पितरो नमो वो, गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वास आधत्त।

यजु० २/३२/

हे पितृगण! तुम से सम्बन्ध रखनेवाली रसस्वरूप वसन्त ऋतु को नमस्कार, शोषक ग्रीष्म ऋतु को नमस्कार, जीवन स्वरूप वर्षा-ऋतु को नमस्कार, स्वधास्वरूप शरद-ऋतु को नमस्कार, प्राणियों के लिए घोर प्रतीत होने वाली हेमन्त-ऋतु को नमस्कार, क्रोध स्वरूप शिशिर-ऋतु को नमस्कार। (अर्थात् तुम से सम्बन्ध रखने वाली सभी ऋतुएँ तुम्हारी कृपा से सर्वथा अनुकूल होकर सब की हितकारिणी हों।) हे षड्ऋतुरूप[१] पितरो! तुम हमें (साध्वी पत्नी और सत्पुत्र आदि से युक्त) उत्तम गृह प्रदान करो।

---

१. 'षड् वा ऋतवः पितरः' इति श्रुतेः। अथवा पितर छः ऋतु हैं—श्रुति।

हे पितृगण! इन प्रस्तुत दातव्य वस्तुओं को हम तुम्हें अर्पण करते हैं, तुम्हारे लिए यह सूत्रात्मक वस्त्र है, इसे धारण करो।

द्वितीय गोत्र तर्पण

तर्पण से पहले पहला मोटक रखकर दूसरा मोटक प्रयोग करें। पितृकुल का मोटक सदैव, मात्र पितृकुल तक सीमित रहता है। दूसरा मोटक सभी तर्पणीयों के लिए प्रयुक्त होता है। पत्नी, पुत्र, पुत्रवधू, भाई, ताऊ और चाचा आदि का तर्पण करते समय पुनः पहले मोटक का प्रयोग करें।

अब द्वितीय गोत्र, मातामह आदि का तर्पण करें। मोटक परिवर्तन के पश्चात्, निम्नलिखित वाक्य बोलते हुए तिल युक्त जल की तीन-तीन अञ्जलियाँ पितृतीर्थ से दें। यथा—ॐ अद्य……गोत्रः……प्रवरः अस्मन्मातामहः…नाम…शर्मा (वर्मा, गुप्तः) अग्निस्वरूपस्तृप्यताम् इदं तिलोदकं तस्मै स्वधानमः। तस्मै०। तस्मै०। ॐ अद्य……गोत्र……प्रवरः अस्मत्प्रमातामहः…नाम…शर्मा, (वर्मा, गुप्तः) वरुणस्वरूपस्तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधानमः। तस्मै०। तस्मै०। ॐ अद्य……गोत्र……प्रवरः अस्मद् वृद्धप्रमातामहः…नाम…शर्मा, (वर्मा, गुप्तः) प्रजापतिस्वरूपस्तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्मै स्वधा नमः)। तस्मै०। तस्मै०।

पूर्वोक्त नाना, परनाना एवं बूढ़े परनाना के तर्पण के बाद इसी भाँति नानी, परनानी और बूढ़ी परनानी का तर्पण करें। यथा—ॐ अद्य…… गोत्रा……प्रवरास्मन्मातामही…देवी दा गङ्गास्वरूपा तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्यै स्वधा नमः। तस्यै०। तस्यै०। ॐ अद्य……गोत्रा…… प्रवरास्मप्रमातामही…देवी दा यमुनास्वरूपा तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्यै स्वधा नमः। तस्यै०। तस्यै०। ॐ अद्य……गोत्रा…… प्रवरास्मद्वृद्धप्रमातामही…देवी दा सरस्वतीस्वरूपा तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्यै स्वधा नमः। तस्यै०। तस्यै०।

पत्नी तथा विविध गोत्र के तर्पणीय

पूर्ववत् अपसव्य, दक्षिणाभिमुख स्थिति में एक-एक को तिलयुक्त-जल की तीन-तीन अञ्जलियाँ दें। कुमारी को उसके पिता तथा विवाहिता को उसके पति के गोत्र से संयुक्त करके नामोच्चार पूर्वक तर्पण करें। गोत्र के अज्ञान में 'यथा गोत्रः' स्त्री के लिए 'यथा गोत्रा'……देवी दा की शब्द योजना करें। ॐ अद्य…गोत्रास्मत्पत्नी…देवी दा वसुस्वरूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा नमः। तस्यै०। तस्यै०। ॐ अद्य…गोत्रः अस्मत्सुतः

(सपत्नीकः)····· शर्मा (वर्मा, गुप्तः) वसुस्वरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा नमः। तस्मै०। तस्मै०। ॐ अद्य·····गोत्रा अस्मत्कन्या कु०·····देवी दा, वा,·······गोत्रा अस्मत्पुत्री·······देवी दा (पति-सुत सहिता) वसुस्वरूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा नमः। तस्यै०। तस्यै०। ॐ अद्य·····गोत्रः अस्मत्पितृव्यः (चाचा)·····शर्मा (वर्मा, गुप्तः) सपत्नीकः + सुत + सुता सहितः वसुस्वरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा नमः। तस्मै०। तस्मै०। ॐ अद्य·····गोत्रः अस्मन्मातुलः (मामा)·····शर्मा (वर्मा, गुप्तः) (सपत्नीकः, सुत-सुता सहितः) वसुस्वरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा नमः। तस्मै०। तस्मै०। ॐ अद्य·····गोत्रः अस्मद्भ्राता (सपत्नीकः सुत-सुता सहितः)·····शर्मा (वर्मा, गुप्तः) वसुस्वरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा नमः। तस्मै०। तस्मै०। ॐ अद्य·····गोत्रः अस्मत्सापत्न भ्राता (सौतेला भाई) सपत्नीकः, सुत, सुता सहितः·····शर्मा (वर्मा, गुप्तः) वसुस्वरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा नमः। तस्मै०। तस्मै०। ॐ अद्य·····गोत्रा अस्मत्पितृभगिनी (बूआ)·····देवी दा (ससुत, पतियुता) वसुस्वरूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा नमः। तस्यै०। तस्यै०। ॐ अद्य·····गोत्रा अस्मन्मातृभगिनी (मौसी)·····देवी दा (सुत-पति सहिता) वसुस्वरूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा नमः। तस्यै०। तस्यै०। ॐ अद्य·····गोत्रा अस्मदात्मभगिनी (अपनी बहन)·····देवी दा (सुत-पति सहिता) वसुस्वरूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा नमः। तस्यै०। तस्यै०। ॐ अद्य·····गोत्रा अस्मत्सापत्नभगिनी (सौतेली बहन)·····देवी दा (सुत-पतिसहिता) वसुस्वरूपा तृप्यतामिदं तिलोदकं तस्यै स्वधा नमः। तस्यै०। तस्यै०। ॐ अद्य·····गोत्रः अस्मच्छ्वशुरः (ससुर)·····शर्मा (वर्मा, गुप्तः) सपत्नीकः, सुत सुतादि सहितः, वसुस्वरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा नमः। तस्मै०। तस्मै०। ॐ अद्य·····गोत्रः अस्मद्गुरुः·····शर्मा (वर्मा, गुप्तः) सपत्नीकः, सुत सुतादि सहितः, वसुस्वरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधानमः। तस्मै०। तस्मै०। ॐ अद्य·····गोत्र अस्मच्छिष्यः·····शर्मा (वर्मा, गुप्तः) सपत्नीकः, सुत सुतादि सहितः वसुस्वरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा नमः। तस्मै०। तस्मै०। ॐ अद्य·····गोत्रः अस्मन्मित्रः·····शर्मा (वर्मा, गुप्तः) सपत्नीकः सुत-सुतादि सहितः वसुस्वरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा नमः। तस्मै०। तस्मै०। ॐ अद्य अस्मदाप्तजनः·····शर्मा (वर्मा, गुप्तः) सपत्नीकः सुतसुतादि सहितः वसुस्वरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा नमः। तस्मै०। तस्मै०।

इसके पश्चात् सव्य होकर, पूर्वाभिमुख हो, त्रिकुश लेकर देवतीर्थ से, बायाँ घुटना ऊपर करके नीचे लिखे श्लोक पढ़ते हुए, जलधारा गिरावें।

ॐ देवासुरास्तथा यक्षा नागा गन्धर्व राक्षसाः।
पिशाचा गुह्यकाः सिद्धाः कूष्माण्डास्तरवः खगाः॥
जलेचरा भूनिलया वाय्वाधाराश्च जन्तवः।
तृप्तिमेते प्रयान्त्याशु मद्दत्तेनाम्बुनाखिलाः॥ २॥

देवता, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, वृक्षवर्ग, पक्षी, जलचर, थलचर और वायु के आधार पर रहने वाले जीव, ये सब मेरे दिये जल से शीघ्र तृप्त हों।

अब पुनः दक्षिणाभिमुख, अपसव्य हो, उत्तरीय को दाहिने कन्धे पर रखकर, बायाँ घुटना मोड़कर, मोटक लेकर, निम्नस्थ श्लोकों को पढ़ते हुए, पितृतीर्थ से तिल-जल दें।

नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः।
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया॥ १॥
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु, ये चास्मत्तोयकांक्षिणः॥ २॥
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदार विवर्जिताः।
तेषां हि दत्तमक्षय्यमिदमस्तु तिलोदकम्॥ ३॥
मातृवंशे मृता ये च पितृवंशे तथैव च।
गुरु श्वसुर बन्धूनां ये चान्ये बान्धवाः मृताः॥ ४॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे, मातृमातामहादयः॥ ५॥
अतीतकुल कोटीनां सप्तद्वीप निवासिनाम्।
आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम्॥ ६॥

जो समस्त नरकों और वहाँ की यातनाओं में पड़कर दुःख भोग रहे हैं, उन को शान्त तथा तुष्ट करने के उद्देश्य से मैं यह जल दे रहा हूँ॥ १॥ जो मेरे बन्धु न रहे हों, जो इस जन्म के बन्धु रहे हों अथवा किसी दूसरे जन्म में मेरे बन्धु रहे हों वे सब तथा जो भी मुझसे जल की अभिलाषा रखते हों, मेरे दिये जल से तृप्त हों॥ २॥ मेरे कुल के लुप्तपिण्ड, पत्नी

तथा सन्तानहीन सभी लोगों को दिया गया यह तिल-जल अक्षय हो॥ ३॥ मेरी माता तथा पिता के कुल में और गुरु, श्वसुर तथा भाइयों के जिन बान्धवों का देहान्त हो चुका है॥ ४॥ (उनके सहित)ब्रह्माजी से लेकर कीटों तक जितने जीव हैं, वे तथा देव, ऋषि, पितर, मनुष्य और माता, नाना आदि पितृगण—ये सब तृप्त हों॥ ५॥ मेरे कुल की बीती हुई करोड़ों पीढ़ियों में उत्पन्न हुए जो-जो पितर ब्रह्मलोक पर्यन्त सात द्वीपों के भीतर कहीं भी निवास करते हों उन की तृप्ति हेतु मेरा दिया हुआ यह तिल-जल उन्हें प्राप्त हो॥ ६॥

वस्त्र निष्पीडन

एकादशी, द्वादशी, अमावस्या, पूर्णिमा, सङ्क्रान्ति और श्राद्ध-दिन को वस्त्र-निष्पीडन न करें। अन्य दिनों में, अपसव्य एवं दक्षिणाभिमुख स्थिति में उत्तरीय के छोर में कुछ तिल रखकर चार परत करके बायें हाथ से जल छोड़ते, पितृतीर्थ से निचोड़ते हुए निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करें। निचुड़ा जल अपनी बायीं ओर गिरायें। जल भूमि पर गिराया जायेगा।

ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः।
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम्॥

''हमारे कुल के निःसन्तान लोग मेरे दिये, वस्त्र से निचुड़े जल को ग्रहण करें।'' अब अपसव्य, दक्षिणाभिमुख स्थिति में तिलजल द्वारा पितामह भीष्म का तर्पण करें। ''वैयाघ्रपदगोत्राय, साङ्कृति प्रवराय च। गङ्गापुत्राय भीष्माय प्रदास्येऽहं तिलोदकम्॥ भीष्मः शान्तनवो वीरः, सत्यवादी जितेन्द्रियः। एभिरद्भि रवाप्नोतु पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम्॥ भीष्माय नमः। भीष्माय नमः। भीष्माय नमः।''

सव्य होकर पूर्वाभिमुख हो—'ॐ नारायणाय नमः' कहकर एक आचमन करें। जल-चावल की धारा देवतीर्थ से गिराते हुए कहें—ॐ ब्रह्मणे विष्णवे तुभ्यं रुद्राय दिनस्वामिने। दिग्भ्यो दिग्देवताभ्यश्च भूम्यै च पुनरग्नये॥ औषधिभ्यो पुनर्वाचे वाचां तु पतये नमः। मित्राय महते चाद्भ्यो वरुणाय च नमोनमः॥

प्रणाम करें। अर्घ्यपात्र में अक्षत, श्वेत पुष्प और जल डालकर निम्नस्थ श्लोक पाठ करते हुए भगवान् सूर्य नारायण को तीन अर्घ्य दें—ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मन्, भास्वते विष्णु तेजसे। जगत् सवित्रे शुचये, नमस्ते

कर्मदायिने॥ एहि सूर्य सहस्रांशो, तेजोराशे जगत्पते। अनुकम्पय मां भक्त्या, गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥ गृहाणार्घ्यं दिवाकर। गृहाणार्घ्यं दिवाकर।

ॐ नारायणाय नमः। ॐ केशवाय नमः। ॐ माधवाय नमः कहते हुए तीन आचमन करें। अर्पण वाक्य बोलें—"अनेन यथाशक्ति कृतेन तर्पणाख्येन कर्मणा मम समस्त पितृस्वरूपी जनार्दन वासुदेवः प्रीयतां न मम।" श्री गयागदाधरस्तृप्यतु। ॐविष्णवे नमः। ॐ वि०। ॐ वि०। आसन के नीचे एक आचमनी जल गिराकर, गायत्री मन्त्र पढ़कर दायीं अनामिका से स्पर्श करके ललाट में लगायें अथवा 'ॐ आधार शक्त्यै नमः' कहें। समाप्त।

संक्षिप्त तर्पण पद्धति

समयाभाव आदि के कारण सम्पूर्ण तर्पण प्रक्रिया के आचरण में असमर्थ श्रद्धालु संक्षिप्त पद्धति का अवलम्बन क़र सकते हैं। कुछ भी न करने से, कम ही किया गया श्रेष्ठ होता है—अकरणान्मन्द करणं श्रेयः।

विस्तृत विवरण मूल पद्धति से जान लें। यथासामर्थ्य सामग्री एकत्र कर लें। पितृ पक्ष के प्रथम दिन प्रातः स्नान के बाद ताँबे के बड़े लोटे में जल भर लें। कुश की पवित्री अनामिका में धारण कर लें। लोटे में तिल-चावल-सफेद फूल तथा तुलसी दल डाल दें। पूर्वाभिमुख बैठकर दायें हाथ में किञ्चित् जल लेकर सङ्कल्प करें—"ॐ अद्य····नाम शर्माहं (वर्मा, गुप्तोहं) यथासामर्थ्यं देवर्षिपितृतर्पणं करिष्ये।" जल सामने थाली में गिरा दें। सव्यस्थिति में बायें हाथ से लोटे द्वारा दायें हाथ पर जलधार छोड़ते, देवतीर्थ से गिराते हुए कहें—"ॐ ब्रह्मा तृप्यताम्। ॐ विष्णुस्तृप्यताम्। ॐ रुद्रस्तृप्यताम्। ॐ प्रजापतिस्तृप्यताम्। ॐ देवास्तृप्यन्ताम्। ॐ छन्दांसि तृप्यन्ताम्। ॐ वेदास्तृप्यन्ताम्। ॐ ऋषयस्तृप्यन्ताम्। ॐ पुराणाचार्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ गन्धर्वास्तृप्यन्ताम्। ॐ इतराचार्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ संवत्सरः सावयवस्तृप्यताम्। ॐ देवानुगास्तृप्यन्ताम्। ॐ नागास्तृप्यन्ताम्। ॐ सागरास्तृप्यन्ताम्। ॐ पर्वतास्तृप्यन्ताम्। ॐ सरितस्तृप्यन्ताम्। ॐ मनुष्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ यक्षास्तृप्यन्ताम्। ॐ रक्षांसि तृप्यन्ताम्। ॐ पिशाचास्तृप्यन्ताम्। ॐ सुपर्णास्तृप्यन्ताम्। ॐ भूतानितृप्यन्ताम्। ॐ पशवस्तृप्यन्ताम्। ॐ वनस्पतयस्तृप्यन्ताम्। ॐ ओषधयस्तृप्यन्ताम्। ॐभूतग्रामश्चतुर्विधस्तृप्यताम्।"

ऋषितर्पण

इसी भाँति निम्नाङ्कित मन्त्रवाक्यों से मरीचि आदि ऋषियों को भी एक-एक अञ्जलि जल दें।

ॐ मरीचिस्तृप्यताम्। ॐ अत्रिस्तृप्यताम्। ॐ अङ्गिरास्तृप्यताम्। ॐ पुलस्त्यस्तृप्यताम्। ॐ पुलहस्तृप्यताम्। ॐ क्रतुस्तृप्यताम्। ॐ वसिष्ठस्तृ-प्यताम्। ॐ प्रचेतास्तृप्यताम्। ॐ भृगुस्तृप्यताम्। ॐ नारदस्तृप्यताम्॥

दिव्यमनुष्यतर्पण

इस के बाद जनेऊ को माला की भाँति कर लें। स्वयं उत्तराभिमुख हो जाँय। निम्नलिखित मन्त्र वचनों को दो-दो बार बोलते हुए दिव्य मनुष्यों के लिए प्रत्येक को दो-दो अञ्जलि जल प्रजापति तीर्थ (कनिष्ठिका के मूल भाग) से अर्पण करें।

ॐ सनकस्तृप्यताम्। ॐ सनन्दनस्तृप्यताम्। ॐ सनातनस्तृप्यताम्। ॐ कपिलस्तृप्यताम्। ॐ आसुरिस्तृप्यताम्। ॐ वोढुस्तृप्यताम्। ॐ पञ्चशिखस्तृप्यताम्। १। ॐ पञ्चशिखस्तृप्यताम्। २॥

दिव्यपितृतर्पण

बाँया घुटना पृथ्वी को स्पर्श करे। स्वयं दक्षिण मुँह बैठकर जनेऊ को दायें कन्धे पर (अपसव्य) कर लें। पितृतीर्थ से (अँगूठा और तर्जनी के मध्यभाग) जल गिराते हुए निम्नलिखित मन्त्रवाक्यों को यथालिखित उच्चारण करते हुए तीन-तीन अञ्जलि जल दें। ॐ कव्यवाडनलस्तृप्य-ताम्। ॐ कव्यवाडनलस्तृप्यताम्। ॐ कव्यवाडनलस्तृप्यताम्। इसी भाँति ॐ सोमस्तृप्यताम्। ॐ सोम०। ॐ सोम० ॐ यमस्तृप्यताम्। ॐ यम०। ॐ यम०। ॐ अर्यमातृप्यताम्। ॐ अर्यमा०। ॐ अर्यमा०। ॐ अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्। ॐ अग्निष्वा०। ॐ अग्निष्वा०। ॐ सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। ॐ सोमपाः पि०। ॐ सोमपाः पि०। ॐ बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्। ॐ बर्हिषदः पि०। ॐ बर्हिषदः पि०।

यमतर्पण

पूर्वोक्त विधि से तीन-तीन अञ्जलि जल यमराज की तृप्ति हेतु अर्पित करें।

ॐ यमाय नमः। ॐ यमा०। ॐ यमा०। ॐ धर्मराजाय नमः। ॐ धर्म०। ॐ धर्म०। ॐ मृत्यवे नमः। ॐ मृत्यवे नमः। ॐ मृत्यवे नमः। ॐ अन्तकाय नमः। ॐ अन्तकाय०। ॐ अन्तकाय०। ॐ वैवस्वताय नमः। ॐ वैव०। ॐ वैव०। ॐ कालाय नमः। ॐ कालाय०। ॐ कालाय०। ॐ सर्वभूतक्षयाय नमः। ॐ सर्वभूत०। ॐ सर्वभूत०। ॐ औदुम्बराय नमः। ॐ औदु०। ॐ औदु०। ॐ दध्नाय नमः। ॐ दध्नाय०। ॐ दध्नाय०। ॐ नीलाय नमः। ॐ नीलाय०। ॐ नीलाय०। ॐ परमेष्ठिने नमः। ॐ परमे०। ॐ परमे०। ॐ वृकोदराय नमः। ॐ वृको०। ॐ वृको०। ॐ चित्राय नमः। ॐ चित्रा०। ॐ चित्रा०। ॐ चित्रगुप्ताय नमः। ॐ चित्रगुप्ताय नमः। ॐ चित्रगुप्ताय नमः।

मनुष्यपितृतर्पण

'समस्तपितृनावाहयिष्ये' कहकर, आवाहन हेतु एक अञ्जलि जल पूर्ववत् पितृतीर्थ से देते हुए कहें—"ॐ आगच्छन्तु मे पितर इमं गृह्णन्त्वपोञ्जलिम्।" अब निम्नलिखित वाक्यों का उच्चारण करते हुए पिता–पितामहादिकों की तृप्ति हेतु तीन-तीन अञ्जलि जल दें—ॐ अद्य····गोत्रः अस्मत्पिता····शर्मा (····वर्मा····गुप्तः····दासः) वसुस्वरूप-स्तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा। तस्मै स्वधा। तस्मै स्वधा। ॐ अद्य····गोत्रः अस्मत्पितामहः····शर्मा (वर्मा····गुप्तः····दासः) रुद्रस्वरूप-स्तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा। तस्मै स्वधा। तस्मै स्वधा। ॐ अद्य····गोत्रः अस्मत्प्रपितामहः····शर्मा (वर्मा····गुप्तः····दास) आदित्य-स्वरूपस्तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा। तस्मै स्वधा। तस्मै स्वधा। ॐ अद्य····गोत्रा अस्मत् माता····देवी दा वसुस्वरूपा तृप्यताम् इदं जलं तस्यै स्वधा। तस्यै स्वधा। तस्यै स्वधा। ॐ अद्य····गोत्रा अस्मत् पितामही····देवी दा रुद्रस्वरूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा। तस्यै स्वधा। तस्यै स्वधा। ॐ अद्य····गोत्रा अस्मत् प्रपितामही····देवी दा आदित्यस्व-रूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा। तस्यै स्वधा। तस्यै स्वधा। इन छः के अनन्तर यदि सौतेली माता थीं, तो उनका तर्पण करें—ॐ अद्य····गोत्रा अस्मत् सापत्न माता····देवी दा वसुस्वरूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा। तस्यै स्वधा। तस्यै स्वधा।

द्वितीय (ननिहाल) गोत्र

पूर्व स्थिति में तिलयुक्त तीन-तीन जलाञ्जलि पितृतीर्थ से देते हुए कहें—ॐ अद्य ...... गोत्रः अस्मन्मातामहः ...... शर्मा वर्मा, गुप्तः वसुस्वरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा। तस्मै स्वधा। तस्मै स्वधा। ॐ अद्य ...... गोत्रः अस्मत्प्रमातामहः ...... शर्मा वर्मा, गुप्तः रुद्रस्वरूपस्तृप्यताम् इदं जलं तस्मै स्वधा। तस्मै स्वधा। तस्मै स्वधा। ॐ अद्य ...... गोत्रः अस्मत् वृद्धप्रमातामहः ...... शर्मा वर्मा, गुप्तः आदित्य स्वरूपस्तृप्यतामिदं जलं तस्मै स्वधा। तस्मै स्वधा। तस्मै स्वधा। ॐ अद्य ...... गोत्रा अस्मन्मातामही ...... देवी दा वसुस्वरूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा। तस्यै स्वधा। तस्यै स्वधा। ॐ अद्य ...... गोत्रा अस्मत् प्रमातामही ...... देवी दा रुद्रस्वरूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा। तस्यै स्वधा। तस्यै स्वधा। ॐ अद्य ...... गोत्रा अस्मत् वृद्धप्रमातामही ...... देवी दा आदित्यस्वरूपा तृप्यतामिदं जलं तस्यै स्वधा। तस्यै स्वधा। तस्यै स्वधा।

हमारे समस्त तर्पणीय जन सात गोत्रों में विस्तृत हैं। ये हम से जल की आकांक्षा रखते हैं। आप्त तथा गुरुजन, सात गोत्र के कुलों के अतिरिक्त हैं। सात गोत्र इस प्रकार हैं—पिता, माता (नाना), पत्नी (श्वशुर), विवाहिता बहन, विवाहिता बेटी, बुआ एवं मौसी। पिता तथा नाना के कुल के अतिरिक्त तर्पण करने की विधि मूल विधि के अनुसार देख लें। निम्नलिखित सामूहिक तर्पण तथा वस्त्र निष्पीडन आदि के मन्त्रों की टीका मूल में देख लें।

वांछित तर्पणीयों के तर्पण के बाद अपसव्य, दक्षिणाभिमुख, पितृतीर्थ से जल गिराते हुए इन मन्त्रों का पाठ करें—

ॐ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः।
तृप्यन्तुपितरः सर्वे मातृमातामहादयः॥
अतीत कुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम्।
आ ब्रह्म भुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम्॥
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मया दत्तेन वारिणा॥
ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः।
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्र निष्पीडनोदकम्॥

अन्तिम श्लोक पढ़ते हुए अँगोछे के छोर को चार परत करके उस में कुछ तिल रख कर, जल से भिगोकर अपनी बायीं ओर पितृतीर्थ से भूमि

पर निचोड़ दें। अब अपसव्य स्थिति में पूर्ववत् दक्षिणाभिमुख पितृतीर्थ से आप्तपुरुष पितामह भीष्म वर्मा को निम्नलिखित श्लोक द्वारा तीन अञ्जलि जल दें।

वैयाघ्रपदगोत्राय साङ्कृतिप्रवराय च।
गङ्गापुत्राय भीष्माय प्रदास्येऽहं तिलोदकम्॥

वैयाघ्रपद गोत्रीय, साङ्कृति प्रवर, गङ्गापुत्र भीष्म को मैं तिल-जल अर्पित करता हूँ।

भीष्माय नमः। भीष्माय नमः। भीष्माय नमः।

अब सव्य होकर पूर्वाभिमुख हो जाँय। देवतीर्थ से जल गिराते हुए कहें—श्री सूर्यनारायणाय नमः। श्री सूर्यनारायणाय नमः। श्री सूर्यनारायणाय नमः।

समर्पण

निम्नलिखित वाक्य पढ़कर तर्पण-कर्म भगवान् को समर्पित करें—अनेन यथाशक्ति कृतेन देवर्षिमनुष्यपितृतर्पणाख्येन कर्मणा ममसमस्त पितृस्वरूपी जनार्दन वासुदेवः प्रीयतां न मम। ॐ विष्णवे नमः। ॐ वि०। ॐ वि०।

सहायक ग्रन्थ

मत्स्यपुराण

महाभारत

छान्दोग्योपनिषद्

आह्निकसूत्रावलिः

नित्यकर्मप्रयोग (गीताप्रेस)

नित्यकर्म-पूजाप्रकाश (गीताप्रेस)

कल्याण साधनाङ्क (१९४० ई०)

विश्वपञ्चाङ्गम्

Kalyana-Kalpataru, April 1994.

Gayatri—I.K. Taimni

लेखक की अन्य रचनाएँ

१. **ब्राह्मण समाज का ऐतिहासिक अनुशीलन**
(उ०प्र० हिन्दी संस्थान द्वारा पुरस्कृत)

२. **एक संस्कृति : एक इतिहास**
(ढाई सौ वर्ष के सांस्कृतिक संक्रमण की महागाथा)

३. **राग जिज्ञासा**
(मोक्षमूलक सङ्गीत का आध्यात्मिक विवेचन)

प्राप्ति स्थल
विश्वविद्यालय प्रकाशन
चौक, वाराणसी-२२१ ००१
फोन व फैक्स : (०५४२) ३५३७४१, ३५३०८२
E-mail : vvp@vsnl.com ● E-mail : vecppl@satyam.net.in

● ●

शुक्लनिकेत
हनुमान मन्दिर पथ, बेतियाहाता
गोरखपुर

● ●

सिप एण्ड बाइट
गोलघर, गोरखपुर